!! श्री हरि !!

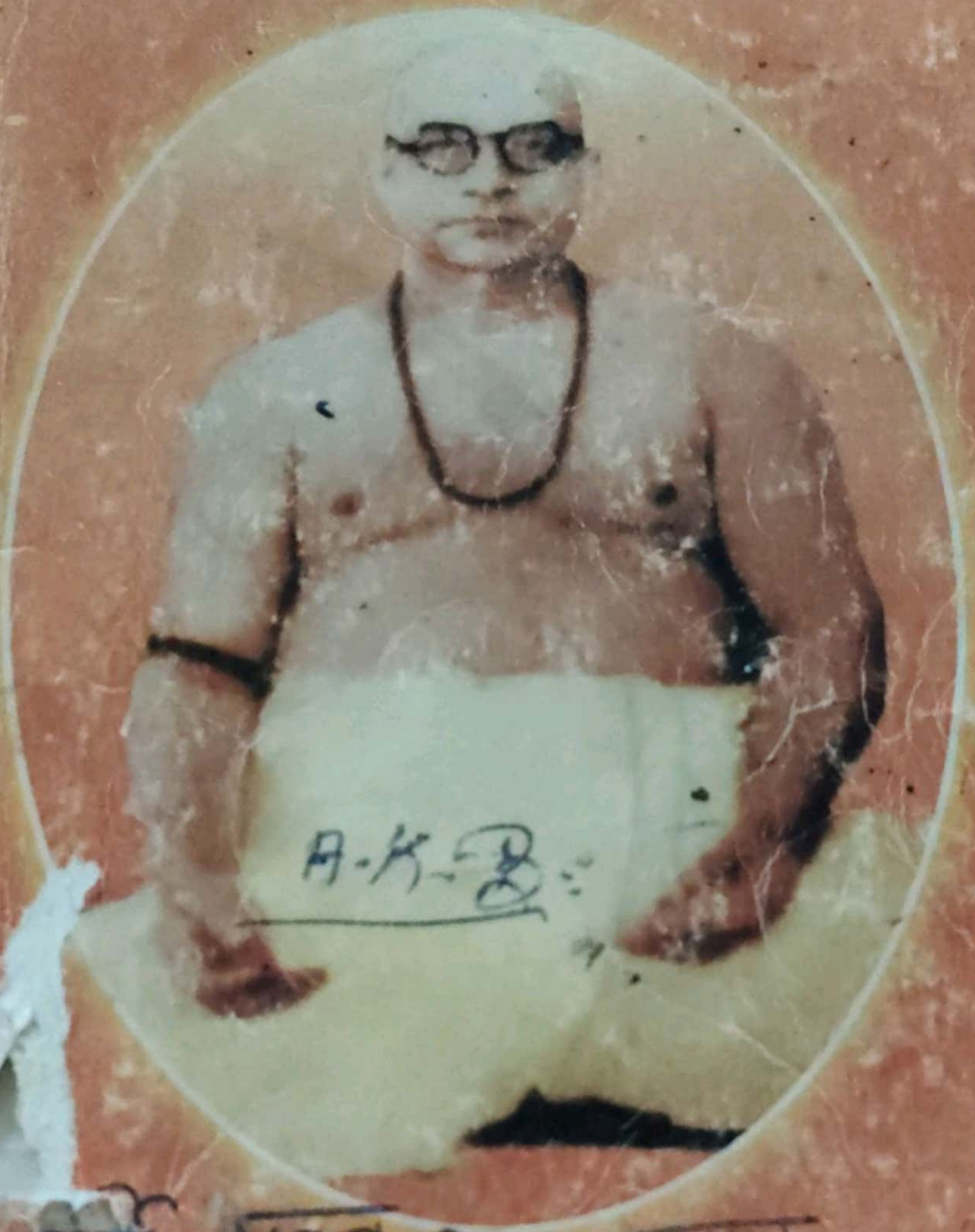

महर्षि मुक्त के उद्गार

महर्षि मुक्त के उदगार

सामान्यनुभूति की अनुभूति एवं परम प्रकाशानुभूति

''ॐ गं गणपतये नम:''

''ॐ श्री गुरूवे नम:''

सामान्यनुभूति की अनुभूति

''नारायणोप निषद्''

ॐ अथपुरूषो हवै नारायणो ऽकामयत प्रजा: सृजेयेति।
नारायणात् प्राणों जायते मन: सर्वेन्द्रियाणी च।
खं वायुर्ज्योति रापः पृथवी विशवस्य धारिणी।
नारायणाद् ब्रम्हा जायते।
नारायणाद् रूद्रो जायते।नारायणाद् इन्द्रो जायते।
नारायणात् प्रजापति: प्रजायते।
नारायणाद् द्वादशाऽऽदित्या: सर्वे रूद्रा सर्वे वसव:
सर्वाणि भूतानि सर्वाणि छन्दांसि नारायणा देव समुपद्यन्
नारायणात् प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते।
अथ नित्यो नारायण:। ब्रम्हा नारायण:। शिवश्च
नारायण:। शक्रश्च नारायण:। कालश्च नारायण:।
दिशश्च नारायण:। विदिशश्च नारायण:।
उर्ध्वंच नारायण:। अधश्च नारायण:।
अन्तर्बहिश्च नारायण:।
नारायणएंए वेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं
निष्कलंको निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यात:
शुध्दो देव एको नारायणो न द्वितीयोस्ति कश्चित्।
य एवं वेद स विष्णु रेव भवति स विष्णु रेव भवति।
ॐ शांति! शांति!! शांति!!!

अजमपि जनि योगं प्रापदैश्वर्य योगा
दगति च गति मत्तां प्रापदे कां ह्यानेकं।
विविध विषय धर्मग्राहि मुग्धे क्षणानां
प्रणत भय विहन्तृ ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि।।

''ॐ गं गणपतये नम:''

''ॐ श्री गुरूवे नम:''

सामान्यनुभूति की अनुभूति

''नारायणोप निषद्''

ॐ अथपुरूषो हवै नारायणो ऽकामयत प्रजा: सृजेयेति।
नारायणात् प्राणों जायते मन: सर्वेन्द्रियाणी च।
खं वायुर्ज्योति राप: पृथवी विशवस्य धारिणी।
नारायणाद् ब्रम्हा जायते।
नारायणाद् रूद्रो जायते।नारायणाद् इन्द्रो जायते।
नारायणात् प्रजापति: प्रजायते।
नारायणाद् द्वादशाऽऽदित्या: सर्वे रूद्रा सर्वे वसव:
सर्वाणि भूतानि सर्वाणि छन्दांसि नारायणा देव समुपद्यन्
नारायणात् प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते।
अथ नित्यो नारायण:। ब्रम्हा नारायण:। शिवश्च
नारायण:। शक्रश्च नारायण:। कालश्च नारायण:।
दिशश्च नारायण:। विदिशश्च नारायण:।
उर्ध्वंच नारायण:। अधश्च नारायण:।
अन्तर्बहिश्च नारायण:।
नारायणएवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं
निष्कलंको निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यात:
शुध्दो देव एको नारायणो न द्वितीयोस्ति कश्चित्।
य एवं वेद स विष्णु रेव भवति स विष्णु रेव भवति।
ॐ शांति! शांति!! शांति!!!

अजमपि जनि योगं प्रापदैश्वर्य योगा
दगति च गति मत्तां प्रापदे कां ह्यानेकं।
विविध विषय धर्मग्राहि मुग्धे क्षणानां
प्रणत भय विहन्तृ ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि।।

जिज्ञासुओं!

आज इस समय सामान्यानुभूति की अनुभूति करानी है। प्रश्न होता है – सामान्यानुभूति क्या है? और इसकी अनुभूति क्या है? देखो–

जो चराचर का अस्तित्व है – ब्रम्हा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त भूत भौतिक प्रपंच में जो अनुस्यूत है – अथवा जो व्यापक है। उसे सामान्य कहते है।

सामान्य का दूसरा अर्थ ये होता है कि – जो सब में घुलमिल कर के रहें – उसे सामान्य कहते है – जो अस्तित्व है – वह सामान्य है। और यह नियम है कि –

जो सामान्य होता है – वह परिछिन्न नहीं होता – एक देशीय नहीं होता – व्यापक होता हैं। और सामान्य होने कें कारण – हर एक की दृष्टि उसके तरफ नहीं जाती। यानी सामान्य के तरफ नहीं जाती। क्योंकि – जो सामान्य होता है – वह सर्व में सर्व रूप से – सर्व होकर रहता है। इसलिए सबकी निगाह उसके तरफ नहीं जाती। यद्यपि –सारा संसार उसकी तलाश में है। क्योंकि जो सामान्य है – वह नित्या नन्द स्वरूप है। और नित्यानंद की खोज सभी को है।

प्राणी मात्र नित्यानन्द की ही तलाश में अनादि काल से लगा है। मन, बचन, कर्म द्वारा जितने भी साधन किए जाते हैं – वह सब नित्यानंद की ही प्राप्ति के लिए किए जाते हैं। मानव नहीं – बल्कि प्राणी मात्र।

प्राणी मात्र की चेष्टा – प्राणी मात्र कि यात्रा – प्राणी मात्र की खोज – एक ही लक्ष्य के लिए है – जिसका नाम है नित्य सुख अथवा नित्यानन्द। यह तलाश या ये यात्रा आज से नहीं – अनादि काल से है। यद्यपि जिसके लिए यात्रा हो रही है – यानी जो प्राणी मात्र के जीवन का चरम लक्ष्य है।

जो मंजिले मखसूद है – यानी जो आखिरी मंजिल है उसकी तरफ सभी की यात्रा है। उसके तरफ सभी की खोज है। परन्तु उसको क्यों नहीं पाते – जबकि रात दिन जितने भी साधन किए जाते हैं – मन से, बचन से, कर्म से, – जितने भी साधन किए जाते हैं – मन, बचन, कर्म द्वारा जो किया जाय –

उसी को साधन कहते हैं। तो साधन किसलिए करते हैं लोग संसार में – किसी संसारी पदार्थ के लिए नहीं – न स्त्री, न पुत्र, न धन, न कलत्र, न इस लोक परलोक संसार के कोई पदार्थ – यानी संसार के जितने भी विषय हैं – जितने भी ऐहिक पारलौकिक पदार्थ हैं – बल्कि ये नित्यानंद को प्राप्त करने के लिए साधन हैं। यानी इनके माध्यम से – नित्यानंद की प्राप्ति हो – ये लालसा रहती है। ये सब आनंद प्राप्ति के साधन हैं। परन्तु – यहाँ प्रश्न होता है कि – अनादि काल से – जब सारा संसार एक ही प्रवाह में प्रवाहित है – और एक ही स्थान के लिए – प्राणी मात्र की यात्रा हो रही है –

तो फिर उसका क्या कोई एक स्थान है ? जी नहीं – वह घन है – ठोस है – परिपूर्ण है – सामान्य रूप से सबमें व्यापक है। सामान्य का लक्षण अभी बताया जा चुका है कि–

जो सर्व में सर्वरूप से सर्व होकर है – उसे सामान्य कहते हैं।

तो मन में मन रूप से मन हो कर है – चित्त में चित्त रूप से चित्त होकर है – बुद्धि में बुद्धि रूप से बुद्धि होकर है – इन्द्रिय में इन्द्रिय रूप से इन्द्रिय होकर है – देह में देह रूप से देह होकर है। तो फिर मिलै कैसे – और मिलै किसको? ढूंढने वाले में – ढूंढने वाला ही होकर – जब है – अरे भाई! खोज करने वाले में – खोज करने वाले का ही रूप होकर और वही होकर – जब वह है – तब खोज करने वाले को वह मिले कैसे?

यह नियम है कि – विशेष के तरफ सबकी निगाह जाती है – सामान्य के तरफ किसी की भी निगाह नहीं जाती। जी हां इसलिए यहाँ पर विचार करना है कि – जिसे सामान्य कहते हैं, वह क्या है।

उसे परमात्मा कहो – या आत्मा कहो – अथवा अस्तित्व कहो – या बोल चाल में – "है" – कह दो।

और जो विशेष है – उसका सूचक या उसका द्योतक या उसकी अभिव्यक्ति – "मैं हूँ" – "मैं हूँ" – इस भाव से है। और जो विशेष है–उसका द्योतक या उसका सूचक – उसकी अभिव्यक्ति – वह है – इस भाव से है। जो विशेष तत्व है –

जैसे – भगवान विष्णु – भगवान कृष्ण – भगवान राम – विशेष तत्व कहे जाते हैं। क्योंकि – आकार प्रकार का विकल्प है इसमें। आकार प्रकार का विकल्प जिसमें होता है– विशेष कहलाता है। और जिसमें आकार प्रकार के विकल्प का सर्वथा अभाव है – वह सामान्य कहा जाता है।

सशङ्.ख चक्रं स किरीट कुन्डलम्।
यह भगवान विष्णु का ध्यान है।
कण्ठे च विराजते च गरलं।
यह शिव का ध्यान है।
नीलाम्भुजश्याम मल कोमलाङ्.ग्म।
यह भगवान राम का ध्यान है।
वंशी विभूषित कराल।
यह भगवान कृष्ण का ध्यान है।

ये विशेष तत्व कहे जाते हैं।
वह राम है – हाँ –
वह राम, वह कृष्ण, वह विष्णु – वह शिव।
इनके लिए – अन्य पुरूष का प्रयोग होता है – वह शब्द का।
इनके लिए वह शब्द का प्रयोग होता है–
समझ में आ रहा है कि नहीं? श्रोता – हाँ –
तो विशेष के लिए – वह का प्रयोग होता है।
और सामान्य के लिए मैं का प्रयोग होता है।
जो चराचर का अस्तित्व है – जो सामान्य तत्व है – सर्व में ओत प्रोत है – सर्व में सर्व रूप से सर्व होकर है – वह सामान्य है। जो सामान्य तत्व है – वह "मैं हूँ" – इस भाव से अभिव्यक्त होता है।
और जो विशेष है – "वह है" – इस भाव से – विशेष तत्व अभिव्यक्त होता है। यहाँ पर बिल्कुल क्लीयर हो गया।
अच्छा– वह भगवान – विशेष होने के कारण – वह की तरफ भैया। सबकी निगाह जाती है – क्योंकि विशेष है।
और परन्तु – "मैं हूँ" – इसके तरफ – सामान्य की तरफ – किसी की निगाह नहीं जाती। जिसके ऊपर संत कृपा होती है– जिसके हृदय में तीव्र आत्म जिज्ञासा होती है – उसकी ही निगाह मैं के तरफ जाती है – सामान्य के तरफ जाती है।

नहीं तो सामान्य के तरफ किसी की निगाह नहीं जाती – नहीं तो प्रायः – वह की तरफ ही सबकी निगाह जाती है। तो – श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, संत महात्मा गण सभी का कहना है – जो परमात्मा है – व्यापक तत्व है – वह मन वाणी का विषय नहीं है – अवाङ्.ग मनस गोचर है।

राम अतर्क्य बुद्धि मन वाणी।
मत हमार अस सुनहू सयनी।
मन समेत जेहि जान न वानी।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते।। 12 ।।

कठोप० अध्यय2 वल्ली3 – पृ०137

श्रुतियाँ स्मृतियाँ सभी मुक्त कण्ठ से कह रही हैं – कि – मन वाणी का विषय नहीं है – मगर यह कोई नहीं कहता कि – मन वाणी का विषय क्यों नहीं है।

अरे – श्रुति कह तो रही है कि –

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

वाणी जहाँ से वापस आ जाती है – जिस तत्व का कथन करने में – वाणी समर्थ नहीं है – वापस आ जाती है।

दृष्टेर द्रष्टारं न पश्येत।

अरे दृष्टि के द्रष्टा को – दृष्टि क्या देख सकती है। मन को जो मनन करता है – मन उसको क्या जान सकता हैं। बुद्धि को जो निश्चय करता है – बुद्धि उसे क्या निश्चय करेगी। वाणी को जो अभिव्यक्त करता है – वाणी उसे क्या अभिव्यक्त करेगी। तो – श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, शास्त्र, वेद, रामायण, गीता, भागवत, संतमहात्मा गण – सबका यही कहना है। परन्तु – यह कोई नहीं कहता कि – मन वाणी का विषय क्यों नहीं है। कहीं पर पढें हो – कहीं पर इतिहास है। इसका – इस विषय का? सभी कहते हैं – मन वाणी का विषय नहीं है– सनातन ब्रह्म जो आत्म तत्व है – अवाङ्.ग मनस गोचर है – मन वाणी का विषय नहीं है – मगर क्यो नहीं है – सुनो? इसलिए नहीं है–

सनातन ब्रह्म परमात्म तत्व – चिदानंद धनभूत, सत स्वरूप – सामान्य तत्व – "मैं हूँ" – इस भाव से जो प्रसिद्ध – जो चराचर का अस्तित्व है – वह हर एक के इतना नजदीक है – इतना समीप है कि – जिसकी सामीप्यता का कोई भी विश्व में उदाहरण नहीं है – जैसे –आँख से एक फुट के फासले पर जो किताब पढ़ी जाती है – अक्षर देखा जाता है – तो आँख के जो विशेषज्ञ होते हैं – जो आँख के डाक्टर होते है – वे कहते हैं – आँख की रोशनी ठीक है – आँख में कोई दोष नहीं है। मगर – एक फुट से कम होने पर – आँख में दोष बताते हैं। और भी कम में पढ़ा जाये – आधा फूट या पौन फुट पर पढ़ा जाये या देखा जाये – तो डाक्टरों का कहना है कि – आँखों में दोष है। विशषज्ञों का ऐसा कहना है। परन्तु जो भगवान आत्मा सामान्य तत्व – सब में घुला मिला हुआ – हर एक के इतना समीप है कि – जिसकी सामीव्यता का कोई उदाहरण नहीं है। अरे भाई ! आँख से इतनी भी दूर – 4–5 अंगुल होय तो – तब कुछ आँख – थोड़ा बहुत देख सकें – आँख से एक फुट के फासले पर जो किताब पढ़ी जाती है – अक्षर देखा जाता है – तो आँख के जो विशेषज्ञ होते हैं – जो आँख के डाक्टर होते हैं – वे कहते हैं – आँख की रोशनी ठीक है – आँख में कोई दोष नहीं है। मगर – एक फुट से कम होने पर – आँख में दोष बताते हैं। और भी कम में पढ़ा जाये – आधा फूट या पौन फुट पर पढ़ा जाये या देखा जाये – तो डाक्टरों का कहना है कि – आँखों में दोष है। विशषज्ञों का ऐसा कहना है। परन्तु जो भगवान आत्मा सामान्य तत्व – सब में घुला मिला हुआ – हर एक के इतना समीप है कि – जिसकी सामीप्यता का कोई उदाहरण नहीं है। अरे भाई ! आँख से इतनी भी दूर – 4–5 अंगुल होय तो – तब कुछ आँख – थोड़ा बहुत देख सकें –(मेरी आँख के ऊपर हाथ रख कर बताते है कि) – अब आँख क्या देखेगी ! अरे भाई – । इतना समीप है कि – जो जिसके समीप है – वह वही होकर है। जब वह वही होकर है – तब फिर – वही उसको कैसे देखें। अब लगा कि नहीं भाव –श्रोता – जी – यानी जो जिसके समीप है – वह – वही

होकर है। तब फिर वही उसको कैसे देखे। वाह – आँख के इतना समीप है कि – आँख में आँख ही होकर है। कर्ण इन्द्रिय में – कर्ण इन्द्रिय होकर है – मन में मन होकर है – चित्त में चित्त होकर है – बुद्धि में बुद्धि होकर है – प्राण में प्राण होकर है – तब फिर भला कौन उसे देख सकता है। कौन उसे जान सकता है। केनोप निषद की श्रुति आती है।

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाच मिमां वदन्ति
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।1।।

वह कौन है जो मन को भेजता है – मन पर जो शासन करता है – वह कौन है?

के ने षितं पतति प्रेषितं मनः – कौन है?
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।

कौन है जो प्राण को संचालित करता है।

केने षितां वाच मिमां वदन्ति –कौन है जो वाणी को अभिव्यक्त करता है।

चक्षुः श्रोत्रं क ॐ देवो युनक्ति ।।1।।

केनोम० ख०1–1–पृ० 42

केनेषितं प्राणः – प्राण का प्राण है।

चक्षु माने नेत्र को – श्रोत्र माने कर्ण को – इसके विषयों में – जो जोड़ता है – वह कौन है?

दूसरी श्रुति इसका समाधान करती है।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो
यद्वाचोह वाच ँ– स उ प्राणस्य प्राणः । 2

केनोप० खं० 1–2– पृ० 42

जो श्रोत्र का श्रोत्र है – मन का मन है – बुद्धि की बुद्धि है – चित्त का चित्त है – और नेत्र का नेत्र है – प्राण का प्राण है। और सर्व का सर्व है।

प्राण प्राण के जीव के जिय सुख के सुख राम ।

बिलकुल यही श्रुति उठाकर यहाँ पर रख दिया है।

भैया ! –

जो सर्व में–सर्व रूप से–सर्व होकर है। तो सर्व उसे अपने से भिन्न किस प्रकार जान सकता है – क्योकि वह सामान्य है। यानी सब में घूल मिल करके है – वह जिसमें है – वहीहोकरहै।

हां जी –

जो सामान्य तत्व है–वह मैं करके अभिव्यक्त होता है–और जो विशेष तत्व है–वह–वह करके अभिव्यक्त होता है। तो–मैं से सामान्य तत्व मैं की एकता है। न कि–जो विशेष तत्व है। उससे मैं की एकता नहीं है।अज्ञानियों को इसीलिए भ्रम होता है कि–

मैं कैसे राम हूँ – मैं कैसे कृष्ण हूँ – मैं कैसे शिव हूँ। मैं कैसे राम हो सकता हूँ – तो उनकी निगाह विशेष की तरफ रहती है – और विशेष से मैं की एकता कभी तीन कालों में हो नहीं सकती – इसलिये भैया! उनका भ्रम जाता नहीं।

सामान्य की तरफ उनकी दृष्टि नहीं – और जिधर निगाह है – उससे मैं की एकता नहीं – तो भला उनका अज्ञान दूर कैसे होय। उनका कल्याण कैसे होय।

जो सामान्य तत्व–व्यापक तत्व जो सर्व का "है" है सर्व का जो अस्तित्व है – जो सर्व में सर्व होकर है सर्व का जो अस्तित्व है – तो उसके तरफ उनकी दृष्टि नहीं उधर निगाह नहीं–और जिधर निगाह है–उधर उससे मैं की एकता नहीं–तो भला उनका भ्रम दूर कैसे होय – उनका कल्याण कैसे होय।

धनुष धारी राम–शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी विष्णु त्रिशुल ध्धारी शिव–वंशी धारी कृष्ण–से–ये सब विशेष हैं भला–मैं की एकता कैसे होगी। मैं की एकता तो–जो सामान्य तत्व है–सर्व में सर्व रूप से सर्व होकर है–उससे मैं की एकता है। उसकी अभिव्यक्ति मैं हूँ।

पुरूष प्रसिद्ध प्रकाश निधि प्रगट परावर नाथ।

जी हाँ –

जो सामान्य तत्व है – उससे मैं की एकता है।

"मैं हूँ" सामान्यानुभूति है।

जम रहा है कि नहीं–श्रोता–हां–
"मैं हूँ" – यही – सामान्य की अनुभूति है। यही सामान्यानुभूति है। अब प्रश्न होता है कि – सामान्यानुभूति की अनुभूति क्या है? यही सामान्यानुभूति है – "मैं हूँ" यही तो सामान्यानुभूति की अनुभूत है – यही सामन्यानुभूति है।

इसको जरा हम और क्लीयर कर दें – साफ कर दें। "मैं हूँ" – यही सामान्यानुभूति है।
अब प्रश्न होता है कि –
सामान्यानुभूति की अनुभूति क्या है?
जो अनुभूति – जो अनुभव किसी को हो, किसी को न हो यह विशेषानुभूति है – बड़े सुन्दर सुन्दर सूत्र निकल रहे हैं अब इसको लिखोगे क्या? जबकि आपके पास रिकार्ड है क्या कहा हमने?
जो अनुभूति किसी को हो – किसी को न हो – वह विशेषानुभूति है – और जो अनुभूति सर्व को हो वह सामान्यानुभूति है।
यह – जो अनुभूति किसी को हो किसी को न हो–वह विशेषानुभूति है– जैसे–अहंब्रम्हास्मि। मैं ब्रह्म हूँ–यह विशेषानुभूति है। मानें – श्रोत्रिय ब्रम्हा निष्ठ आचार्य की शरण में जाकर तत्व मसि महावाक्य का – श्रवण मनन निदिध्यासन करके जो यह ज्ञान प्राप्त करता है कि – "मैं सनातन व्यापक ब्रम्ह हूँ" "अहं ब्रम्हास्मि"– जो श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा यह ज्ञान प्राप्त करता है – यह विशेष ज्ञान हुआ। अहं ब्रह्मास्मि की जो अनुभूति हुई – इसका नाम विशेषानुभूति है। यह सबको नहीं होती – किसी को होती है और किसी को नहीं होती – यह विशेषानुभूति का लक्षण है। और सामान्यानुभूति का लक्षणक्याहै? अरे! "मैं हूँ" – यह किसी को है – किसी को नहीं है – कि सर्वकोहै?
यह सामान्यानुभूति सर्व को है।
निर्विवाद, निर्विरोध, सार्वभौम है। ये जो छोटे छोटे बच्चे बैठे हैं (मेरे तीनों बच्चे – सौ.का.सुकन्या चि.श्रवण सौ.का.संगीता तीनों सामने बैठे थे) इनको किसी ने सिखाया है – कि "मैं हूँ"। ये कहीं स्कूल में पढ़ने गए हैं – "मैं हूँ" – को। छोटे से लेकर बड़े तक – मूर्ख हो विद्वान हो सन्यासी हो गृहस्थी हो – राजा

हो भिखारी हो – "मैं हूँ" इस पद का अनुभव सबको है। और सामान्य रूप से है – एक नहीं सबको है। बिना किसी के बताये। बिना किसी के ज्ञान दिए – बिना किसी के शिक्षा प्राप्त किए ही – यह ज्ञान सबको है – कि – "मैं हूँ" – बस यही सामान्यानुभूति हैं।

"यही सामान्यानुभूति है।"

अब प्रश्न होता है कि – मैं क्या हूँ?

अगर यह प्रश्न करते हो तो सामान्य से वंचित होते हो। जब ये प्रश्न करते हो तो – सामान्यपद से विचलित होते हो। विशेष हो जावोगे – और जो विशेष होता है – वह परिछिन्न होता है – लिमिटेड होता है – और जो परिछिन्न होता है – वह नाशवान होता है।

सामान्य ही – अजर, अमर, अजन्मा, अविनाशी होता है।

विशेष नहीं।

जदि प्रश्न करते हो – मैं हूँ तो – मगर क्या हूँ? कैसा हूँ? जदि यह प्रश्न करते हो तो तुम सामान्य से वंचित होते – मैं कैसा हूँ – यह जो विकल्प है – सामान्य पद से विचलित करता है – हटा देता है – नहीं समझे। सामान्य पद से विचलित करता है – हटा देता है। मैं क्या हूँ – मैं कैसा हूँ? यह जो विकल्प करते हो । इस विकल्प का सर्वथा अभाव हो जाना ही – सामान्य पद की अनूभूति है। मैं क्या हूँ – मैं कैसा हूँ? इस विकल्प का सर्वथा अभाव हो जाना ही सामान्य पद की अनुभूति है। यावानहं–

चतुःश्लोकी भागवत में ~~भाग्वत में~~ भगवान ने कहा है कि "यावानहं" मैं जैसा हूँ। यह नहीं कहा जा सकता कि मैं ऐसा हूँ। हां जी। "मैं हूँ" – इस सामान्य पद का विवेचन हो रहा है। "मैं हूँ" – यह सार्व भौम है, निर्विरोध है, और यह सबको है।

कि "मैं हूँ"।

मैं क्या हूँ – मैं कैसा हूँ – मै कौन हूँ– इसकी व्याख्या शास्त्रकारों ने किया है।

मैं क्या हूँ – मैं कैसा हूँ – मैं कौन हूँ – इन विकल्पों की

व्याख्या शास्त्रकारों ने किया है। परन्तु–
"मैं हूँ" – इसकी व्याख्या हो ही नहीं सकती।
मैं क्या हूँ – सत हूँ, चित हूँ, आनन्द हूँ, कूटस्थ हूँ, साक्षी हूँ, दृष्टा हूँ, ज्ञाता हूँ, व्यापक हूँ, मैं अखण्ड हूँ – अरे–मैं पर ये सब विकल्प ही तो है – जबकि –
"मैं" – मन वाणी का विषय नहीं हूँ।
नाजेषु सर्व धर्मेषु शाश्वता शाश्वताभिधा।
यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते।। 60

गोड़पादीयका० अलात० शान्त्यारव्यं 4 प्रक्र पृ० 521

भगवान गौड़ पदाचार्य कहते हैं –
अरे – जहाँ पर वाणी की गम नहीं – अरे – वाणी जहाँ नहीं जा सकती – तो फिर उसके सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है कि ऐसा है और ऐसा नहीं है।

नाजेषु सर्व धर्मेषु शाश्वता शाश्वताभिधा ।

जो अजन्मा ब्रह्म है – उसके विषय में उसके सम्बन्ध में = यह नहीं कहा जा सकता कि – वह शाश्वत है कि अशाश्वता है। शाश्वत मानें निरंतर – हमेशा जो रहें – उसको शाश्वत कहते हैं। और जो कभी रहें – और कभी न रहें– उसको अशाश्वत कहते हैं। आचार्य कहते हैं –
" यत्र वर्णा न वर्तन्ते "
अरे जहाँ पर वाणी की गम नहीं है – अरे – वाणी कुछ कह ही नहीं सकती – तो फिर उसके लिए – क्या विवेक हैं – कि ऐसा हैं – और ऐसा नहीं हैं।
यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ।।60 गौ० पा०क० पृ –52 ।
इसलिए – मैं जैसा हूँ – बस –
ऐसा हूँ को वाणी कथन करती है – मगर जैसा हूँ को – कथन करने में वाणी समर्थ नहीं हैं। क्योंकि –
मैं भगवान आत्मा सामान्य तत्व – सामान्य रूप से वाणी में –

वाणी रूप से वाणी होकर हूँ। तो फिर वाणी – मुझ भगवान आत्माका क्या कथन करेगी। दृष्टि में दृष्टि रूप से – दृष्टि होकर हूँ। तो फिर – मुझ (भगवान) आत्मा को दृष्टि क्या देख सकती है। क्योंकि – मैं आत्मा जिसमें हूँ – उसी रूप से वही होकर हूँ। तो फिर वह – मुझ आत्मा को क्या जान सकेगी। क्या देख सकेगी – क्या कथन कर सकेगी – क्या निश्चय कर सकेगी। बुद्धि में – बुद्धि होकर हूँ – इसलिए – बुद्धि मुझ आत्मा का निश्चय नहीं कर सकती।

तो श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, – कहती तो हैं कि – आत्मा अवाङमनस गोचर है – मन वाणी का विषय नहीं हैं। मगर क्यों नहीं है – इसका ये कारण बताया जाता है कि – सर्व में सर्व रूप से सर्व होकर है – इसलिए कि –

मैं आत्मा सामान्य तत्व हूँ – जो सामान्य तत्व होता है – वो सब में घुलमिल कर रहता हैं।

विशेष तत्व को देखने के लिए तो साधन हैं। परन्तु – सामान्य तत्व का दर्शन करने के लिए संत कृपा हैं। बस – इसीलिए यह पद कृपा साध्य बताया है। सामान्य तत्व – कृपा साध्य बताया है – क्योंकि है – ही। कोई बाहर की चीज तो है नहीं। जो पदार्थ अपने आप से भिन्न होता है – उसको प्राप्त करने के लिए – साधन की शरण में जाना पड़ता है – वह साधन निजन्य कहलाता है – वह साधन जन्य हैं। और जो स्वयं अपना आप हो – उसको प्राप्त करने के लिए–इसके लिए–संत कृपा ही साधन है – क्योंकि वह प्राप्ति की प्राप्ति हैं। यह कृपा साध्य है। इसके लिए – संतकृपा ही साधन है – संतशरण ही साधन है। इसलिए कि –

मैं आत्मा सामान्य तत्व हूँ – यही सामान्य पद की अनुभूति है। यह सब कुछ होते हुए भी – कुछ लोग विषय को समझने के बाद भी – इस तत्व को समझ लेने पर भी – अपने अन्दर कमी देखते हैं। यानी – इस तत्व को – सामान्य तत्व को समझ

लेने पर भी अपने अन्दर कमी देखते हैं – तो फिर उन्होंने समझा नहीं। अगर अपने अंदर कमी दिखई पड़ती है – तो समझलो कि – वास्तव में उन्होंने समझा नहीं।

अरे – समझ लेने पर भी कमी। किस बात की कमी – किस चीज की कमी। "मैं हूँ" – अगर इसमें कोई कमी हो। विषय जम रहा हैं कि नहीं – जिज्ञासु – हां – अरे – "मैं हूँ" – अगर इसमें कोई कमी हो – तब तो मेरे अन्दर कमी है – अब कमी की व्याख्या हो रही हैं – घड़ाघड़।

देख लेना – एक।

"मैं हूँ"– इसमें यदि कमी हो – तब तो वस्तुतः मेरे अंदर कमी है। मेरे अन्दर कमी है – इस कमी को जानने में अगर कमी हो – तब तो मेरे अन्दर कमी है। अब कमी की व्याख्या हो रही है – विवेचन हो रहा है – घड़ा घड़। देख लेना टेप को कैच करना।

"मैं हूँ" – यदि इसमें कोई कमी हो – तब तो वस्तुतः मेरे अन्दर कमी है। एक 1

मेरे अंदर कमी है – इस कमी को जानने के लिए अगर मेरे अंदर कमी है – तब तो मेरे अंदर कमी है।

मेरे अन्दर कमी हैं – इस कमी को मैं जानता हूँ कि नहीं – जिज्ञासु कहती है – हां जानती हूँ। मेरे अन्दर कमी है – इसका ज्ञान मुझ आत्मा को है। अथवा नहीं – ? जिज्ञासु – हैं। है – फिर प्रश्न है – किस चीज की कमी है। जानने की कमी है – या न जानने की कमी है – कि – कमी की कमी है – किस चीज की कमी है मुझमें ! बस – जिज्ञासु – कोई कमी नहीं है मुझमें। यघपि कोई कमी नहीं है – फिर भी मेरे अन्दर कमी है अरे – इस विकल्प का नाम ही कमी है। बस – यघपि मेरे अन्दर तीन कालमें कमी नहीं है – परन्तु – मेरे अन्दर कमी है – इस प्रकार का जो विकल्प है – इसका ही नाम कमी है। ये बात – इसलिए – जिज्ञासुओं! अपने अन्दर कमी मत देखो।

इस विकल्प को हटा दो – इस विकल्प को फेंक दो – अपने आपको सब प्रकार से पूर्ण देखो – अपने को सब प्रकार से पूर्ण जानों। यदि अपने अंदर कमी देखोगे – तो पूर्णता न दिखाई पड़ेगी। अरे – कमी ही कमी दिखाई पड़ेगी। जब तुम अपने आप को संसार देखते हो – तब तुम्हें कमी दिखाई देती हैं। भैया! तुम भगवान आत्मा हो – तुम भगवान आत्मा हो। जब तुम अपने को संसार मानकर संसार देखते हो – अपने आप को देह मानकर देह देखते हो। अपने आप को स्त्री पुरूष मानकर – स्त्री पुरूष देखते हो। अपने आप को जीव मानकर जीव देखते हो – कर्ता, भोक्ता, सुखी दुखी – धर्मी, अधर्मी– नर्की, स्वर्गी – पुण्यी पापी– बद्ध, मुक्त – ज्ञानी अज्ञानी – ये विकल्प किया किसने ये विकल्प हुऐ किस पर – इन विकल्पों का आधार कौन है, और इसका विकल्पक कौन है? जब मैं अपना आप ही – इस खेल का रचयिता – अरे – जब मैं स्वयं हूँ – तो भैया! जैसे तुम अपने को संसार मानकर – देहादिक प्रपंच मानकर देह देखते हो – संसार, दृश्यादिक प्रपंच मानकर संसार देखते हो – इसी प्रकार – तुम अपने में कमी मानकर– कमी देखते हो – अपने आप में तुम्हें कमी दिखई दे रही हैं। कोई कमी नहीं हैं।

भाव वृत्या हि भावत्वं शून्य वृत्या हि शून्यता।
पूर्ण वृत्या हि पूर्णत्वं तस्मात् पूर्णत्व मभ्यवेत।।

यह श्रुति हैं।

जी हां –

यदि अभ्यास करना है – अनुसंधान करना है – यदि चिन्तन करना है – तो पूर्णत्व का चिंतन करो। "मैं सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ।" मुझमें कोई कमी नहीं है – जी हां – नहीं तो तुम्हारा ये विकल्प ही तुमको नीचे गिरायेगा। कमी ही कमी तुमको दिखाई पड़ेगी – पूर्णता से तुम वंचित हो जावोगे – क्योंकि – अपने सिवाय दूसरा है कौन?

अरे – मेरे अन्दर कमी है – इस प्रकार का विकल्प – इस विकल्प का विकल्पक – मूझ आत्मा के सिवाय दूसरा कौन होगा।

बस – आज से। आज से नहीं – बल्कि अभी से – सब निकाल दो– कि मेरे अन्दर कमी है – इस विकल्प को निकाल दो – सब प्रकार से मैं आत्मा पूर्ण हूँ। बस – आज से नहीं – बल्कि अभी से – सब विकल्प को निकाल दो – मुझ आत्मा के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। क्योंकि – मैं भगवान आत्मा सत्य संकल्प हूँ। सत्य काम हूँ – जैसा संकल्प करता हूँ – वह संकल्प ब्रह्मा भी काटने में समर्थ नहीं है।। बशर्ते की – अपने आप को – जीव न मानकर – अपने आप् को भगवान आत्मा जानों।

ज़ी हां–

कोई कमी नहीं है – इसलिए कि – भगवान आत्मा सामान्य रूप से सर्व में – सर्व रूप से सर्व होकर है। और "मैं हूँ" – इसका अज्ञान किसी को नहीं है। कोई नहीं कहता कभी कि – मैं तो नहीं हूँ। इसका अज्ञान किसी को नहीं है। इसका ज्ञान सबको है। जिस प्रकार – "मैं हूँ" – सामान्य पद है – इसी तरह – सामान्यरूप से – इसका ज्ञान भी तो सर्व को है – व्यापक है। "मैं हूँ" – अरे भाई।

भूत काल में "मैं हूँ"– भविष्य काल में "मैं हूँ" – वर्तमान काल में मैं हूँ –"मैं" – किस काल में नहीं हूँ। "मैं" – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति – किस काल में नहीं हूँ। इसका ज्ञान सबको है। विशेष रूप से कि – सामान्य रूप से – सामान्य रूप से सर्व को है – ऐसा ज्ञान। जी हां – तो जिस प्रकार – "मैं" भगवान आत्मा सामान्य रूप से – सर्व में – सर्व रूप से – सर्व होकर हूँ। इसी तरह – "मैं हूँ" – इसका ज्ञान भी सबको है। मैं नहीं हूँ – ऐसा भ्रम – किसी को नहीं होता। अच्छा – फिर मुझ भगवान आत्मा का ज्ञान – कितना अखण्ड है कि – कभी

खण्डित होता ही नहीं। कब से मैं जानते चला आ रहा हूँ – आज दिन तक कितना दिन हुआ इसका पता नहीं। कितना दिन हुआ – अब सन् संवत् तो है नहीं। अरे – जब से मैं आत्मा हूँ तब से मुझ पर आत्मा का जानना पना भी तो है। क्योंकि – जिसका जो धर्म होता है – वह धर्म अपने धर्मी से भिन्न नहीं होता – जब से आँख तब से देखना – और जब से देखना तब से आँख – क्योंकि देखना आँख का धर्म है। तो देखना और आँख ये दो चीजें अलग–अलग नहीं है। देखना गया तो आँख गई – आँख गई तो देखना गया। जो जिसका धर्म होता है – वह अपने धर्मी से भिन्न कभी नहीं होता – यह निर्विवाद सिद्धान्त है। जानना मुझ आत्मा का धर्म है – और मैं आत्मा धर्मी हूँ, तो जानना पना – मुझ आत्मा से कभी भिन्न नहीं है। अरे – जानना पना है तो – मैं हूँ – मैं हूँ तो जानना है। पूज्य पिताजी कहे कि – मैं शाश्वत हूँ। तो परम पूज्य स्वामी जी कहे कि – जी हाँ – मैं शाश्वत हूँ। तो मैं आत्मा का जानना पना भी शाश्वत है। जी हाँ मगर – कब से जान रहा हूँ – और कब तक जानता रहूँगा – इसके शुरूआत का पता है – न आखिरी का – वाह – इतना दिन हुआ मुझ को जानते जानते – मगर – मुझ आत्मा के जानने पने में कमी न आई – अगर जानने पने में कमी आ जाय तब तो समझो मेरे अन्दर कमी है। यह मीटर है भैया! जानने पने में मुझ आत्मा के ज्ञान में कभी कमी न आई। इसलिए मुझ भगवान आत्मा का ज्ञान अखण्ड है।

ज्ञान अखण्ड एक सीता वर।

मुझ आत्मा का ज्ञान कभी खंडित नहीं होता – कोई कमी नहीं आई। और फिर देखो–काम करते–करते हाथ थक जाता है – चलते–चलते पैर थक जाते हैं – देखते–देखते आँख थक जाती है – सुनते–सुनते कर्ण इन्द्रिय थक जाती है– बोलते–बोलते मुंह थक जाता है – दौड़ते–दौड़ते मन थक

जाता है – चिन्तन करते–करते चित्त थक जाता है – विचार करते करते बुद्धि थक जाती है – सोचते सोचते दिमाग थक जाता है – ये सब थक जाते हैं। मगर वाह–

जानते–जानते मैं न थका आज तक

वाह भाई वाह –

जानते जानते मैं आत्मा न थका – भैया।

मुझ भगवान आत्मा को थकावट नहीं आई। बहुत दिन हो गए यार। मुझ भगवान आत्मा को जानते अब थोड़ी दिन मैं न जानू – अब थोड़ी दिन मैं आराम कर लूँ। तो – मुझ भगवान आत्मा को – आराम की क्या जरूरत। जब कि – मुझमें ही सबका विश्राम है।

सो सुख धाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक विश्रामा।।

जबकि – मुझ आत्मा में ही – सर्व का विश्राम है। सारी नदियों का विश्राम स्थल तो समुद्र ही है। जब तक नदियां समुद्र को नहीं जान लेती – जब तक नदियाँ समुद्र को नहीं प्राप्त कर लेती – तब तक नदियों का जो भटकना है – जंगलों ओर पहाड़ों में टकराना बंद नहीं होता। नदियों का जैसे विश्राम स्थल सागर है – समुद्र हैं। ऐसे सारे चराचर का विश्राम स्थल मैं आत्मा हूँ। मुझ को जब थकावट हो तब न विश्राम मिले तब न विश्राम की जरूरत पड़ै।

अखिल लोक दायक विश्रामा।

सबका विश्राम स्थल मैं आत्मा हूँ – बिना मुझ आत्मा के विश्रान्ति किसी को मिल ही नहीं सकती मन को हमेशा के लिए।

सरिता जल जलनिधि महं जाई।
होय अचल विमि जिव हरिपाई।

राम किष्किन्धा. दो. 14–8 वृ. 402

जी हाँ – देखिए – कितना सुन्दर उदाहरण दिया है – सरिता

वो नदी है –

सरिता जल निधि महं जाई।

नदियों को जिस प्रकार समुद्र में पहुँच कर – जाकर विश्रान्ति मिल जाती है – जल निधि में नदी अचल हो जाती है। नहीं तो – नदी का नाम है चल। नदी अचल नहीं है– नदी चल है। इसीलिए पंजाब को पंचाल कहते हैं। द्रौपदी वहाँ की थी – इसलिए – उसका नाम पड़ा – पांचाली। चाल कहते हैं नदी को – पंच माने पांच – पांचाली। जहाँ पर पाँच नदी हो – उसको कहते हैं – पंजाब। सतलज, चिनाव, झेलम, व्यास और रावी। ये पाँच नदियाँ जहाँ पर – जिस मुल्क या प्रांत में बहे उसको कहते हैं – पंजाब या पंचाल। आब कहते है परिभाषन में पानी को तो भैया! नदियों का नाम है चल – मगर जब सागर में पहुँच जाती है – समुद्र मे – तब नदियां अचल हो जाती है। इसी प्रकार जीव चल है। – जीव को विश्रान्ति कहां – अनादि काल से – नाना योनियों में – आवागमन के चक्कर में पड़ा है – घूम रहा है – भटक रहा है – उसे विश्रान्ति कहां। इसलिए जीव चल है – मगर जलनिधि के समान आत्मानंद सागर – निजानंद सागर – परमात्म तत्व सागर – सामान्य तत्व सागर में – जब यह जीव पहुँच जाता है– प्राप्त कर लेता है – पा लेता है – तब यह जीव अचल हो जाता है।

होई अचल जिमि जिव हरि पाई।। 8। पृ. 402

अचल हो जाता है – यानी भगवान हो जाता है। जैसे नदियाँ समुद्र को जानकर समुद्र हो जाती है। मगर तारीफ ये है –

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्द ते
पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्र मेवा पियन्ति
स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरिय
महमसमीय महस्मीति ।।1।।

छान्दोग्योपनिषद् ख. 10 पृष्ठ 668

नदियाँ जब समुद्र में जाती है – समुद्र को प्राप्त करती है – समुद्र को जानती है – तो समुद्र को प्राप्त कर समुद्र हो जाती है। परन्तु नदियों को यह पूर्वा पर स्मृति नहीं रहती कि आज के पहले मैं – गंगा, यमुना – या अमुक नदी थी और आज मैं समुद्र हो गई – इसकी स्मृति – नदियों को नहीं रहती। क्योंकि यदि स्मरण रहै – समझो कि नदी अभी समुद्र में पहुँची ही नहीं – अभी तक वह समुद्र को पाई नहीं। क्योंकि जब नदी का वजूद ही मिट गया – उसका अस्तित्व ही मिट गया तो नदी ही नहीं रही – तो स्मृति किसको रहै कि – आज के पहिले – मैं अमुक नाम की नदी थी। अब समुद्र हो गई।

इसी प्रकार – जीव जब परमात्मा का अनुभव कर लेता है सामान्य तत्व अपने आप का अनुभव कर लेता है– तब उसको भी स्मृति नहीं रहती कि – आज के पहिले मैं जीव था – अब ब्रम्ह हुआ – आज के पहले मैं बद्ध था – अब मुक्त हुआ। आज के पहले मैं अज्ञानी था, अब ज्ञानी हुआ। यह स्मरण रहै किसको – क्योंकि – अस्तित्व ही जब समाप्त हो गया – मतलब यह कि – कमी किस बात की है। कोई कमी नहीं है – सब लबालब है पूर्ण। इस विकल्प को हटा दो – हटा दो इस विकल्प को – सब लबालब है पूर्ण।

तस्मात पूर्णत्व मभ्यवेत।

अब प्रश्न होता है कि – यह तो समझ गये कि – मुझ आत्मा में कोई कमी नहीं है – मैं सब प्रकार से पूर्ण हूँ। देखों समझना विषय –

मैं ऐसा हूँ – इस देश में कमी का विकल्प है – कि मैं जैसा हूँ – इस देश में कमी का विकल्प है? उत्तर – मैं ऐसा हूँ– मैं ऐसा हूँ इस देश में कमी का विकल्प है। तो फिर – मैं ऐसा हूँ अरे – इस देश में जब तक रहोगे – तब तक तुमको भैया! कमी दिखाई देती रहेगी। मैं ऐसा हूँ – इस देश से निकल कर – मैं जैसा हूँ – इस देश में आवो। इस देश में

आकर यदि फिर तुम्हें कमी दिखाई दे – पड़े – तो फिर तुम्हारे प्रश्न का समाधान ढूंढा जाये।

ये बात – आया न समझ में – यह –जिज्ञासु – हां ये तो विकल्प में ही ऐसा मालूम होता है। जब अपने आप को तुम कुछ मानते हो – कि मैं देह हूँ – कि – मैं जीव हूँ – कि मैं अमुक हूँ – जब तुम अपने को कुछ मानते हो – तभी तुमको कमी महसूस होती है – तभी ऐसा अनुभव करते हो – तभी तुम्हें कमी दिखाई देती है। और मैं जैसा हूँ – जब इसका अनुभव करते हो – तब फिर वस्तुतः "मैं जैसा हूँ" इस देश में कमी तीन काल में है ही नहीं। इसलिए – अपने को पूर्ण जानो। पूर्ण पूर्ण जानों – परिपूर्ण जानो – यही सामान्य पद की अनुभूति है। बात ये है कि – सत शास्त्रों का विचार लोग नहीं करते – और न संतों की शरण में जाकर – इसको जानने की कोशिश करते हैं – तो फिर ये गुत्थियां सुलझै कैसे? मुश्किल तो ये है। हां जी – विशेषानुभूति और सामान्यानुभूति– विकल्पानुभूति को विशेषानुभूति कहते हैं – अनुभूति की अनुभूति को – सामान्यानुभूति कहते हैं। मैं ऐसा हूँ – यह विकल्पै तो है। जिज्ञासु – हाँ यह विशेषानुभूति है। तो विकल्पानुभूति को– विशेषानुभूति कहते हैं – और अरे –अनुभूति की अनुभूति को – सामान्यानुभूति कहते हैं। और – "मैं हूँ" यह सामान्यानुभूति तो सबको है। इस अनुभूति की अनुभूति को सामान्यानुभूति कहते हैं। यह – हां जी – अब यहाँ पर प्रश्न होता है कि – चिंतन किसका किया जाता है – विशेष का अथवा सामान्य का – यह प्रश्न है? चिंतन दोनों का किया जाता है – विशेष का भी और सामान्य का भी। दोनों चिंतन के लक्षण क्या हैं। ये प्रश्न है? विशेष का चिंतन चित्त से होता है – जिसका चिंतन चित्त से किया जाय वह विशेष का चिंतन है। और जिसका चिंतन बिना चित्त से किया जाय वह सामान्य का चिंतन है। क्योंकि विशेष है विकल्प रूप – और

विकल्प का चिंतन चित्त से होता है। और विकल्प का ही चिंतन चित्त से होता है – विशेष के चिंतन में चित्त स्थिरता की आपेक्षा है – मानें जरूरत हैं। क्योंकि चित्त ही तो उसका आधार हैं – चित्त से ही तो विकल्प हुआ हैं। चित्त ही उसका आधार हैं – और इस विकल्प के आकार प्रकार का विकल्प चित्त में ही होता हैं। विशेष का जो आकार प्रकार हैं – वह चित्त के अन्दर तो हैं। जब चित्त चंचल होगा – तो वह विशेष का ध्यान चिंतन भी गया।

जब चित्त स्थिर होगा तभी तो उस विशेष का – चिंतन या ध्यान हो सकता हैं। अन्यथा नहीं। मगर सामान्य का जो चिंतन हैं – चित्त की स्थिरता चंचलता से – उसका कोई सम्बन्ध नहीं हैं। चित्त स्थिर होय तब और चित्त अस्थिर होय तब – चित्त की स्थिरता और अस्थिरता से– सामान्य तत्व जो मैं आत्मा हूँ – इसका कोई सम्बन्ध नहीं हैं। सामान्य पद जो मैं आत्मा हूँ – इसके चिंतन का चंचलता स्थिरता से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। अच्छा देखो – याने जब चित्त स्थिर होता हैं – चित्त की स्थिरता का अनुभव मैं करता हूँ कि नहीं – जिज्ञासु – करता हूँ – और चित्त जब चंचल हो जाता हैं – इसका भी अनुभव मैं करता हूँ – तो – मैं तो सर्व अवस्था सर्व काल में एकरस रहता हूँ। देखो – अगर चित्त के स्थिर होने में मैं स्थिर होऊँ – और यदि – चित्त के अस्थिर होने में मैं अस्थिर माने चंचल हो जाऊँ – तब तो चित्त की स्थिरता चंचलता से – मुझ आत्मा के ध्यान का सम्बन्ध है– और जब चंचलता में – मैं चंचल नहीं होता – स्थिरता में मैं आत्मा स्थिर नहीं होता – तो फिर – चित्त की चंचलता स्थिरता से मुझ आत्मा का क्या सम्बन्ध हैं। यह – मैं सर्व काल में – सर्व अवस्था में – जैसा हूँ – वैसा ही हूँ। कहा जाय कि मैं ऐसा हूँ – तो मैं ऐसा नहीं हूँ। जिज्ञासु पू० पिता जी (भैया) समाधि में विशेष का ही ध्यान होता हैं। परम पूज्य श्री स्वामीजी – हो समाधि में भी। अरे -- चित की स्थिरता को ही

तो समाधि कहते हैं। तो जिस प्रकार "मैं" आत्मा चित्त की चंचलता में रहता हूँ – उसी प्रकार "मैं आत्मा" – स्थिरता में रहता हूँ। अगर – "मैं हूँ" – इसमें कोई परिवर्तन हो जाय – स्थिरता चंचलता से – तब तो आत्म चिंतन के लिए – चित्त स्थिर करने के लिए जरूरत हैं। जी हां – विशेष चिंतन के लिए चित्त को रोकना पड़ेगा। विशेष के चिंतन में – चित्त के निरोध की जरूरत हैं। मगर – आत्म चिंतन में सामान्य चिंतन में निरोध की कोई जरूरत नहीं हैं। मैं जहाँ हूँ – मैं जैसा हूँ – वैसा हूँ। जहाँ हूँ – जैसा हूँ – जिस प्रकार हूँ – वैसा हूँ। कोई चित्त से मुझ आत्मा का सम्बन्ध नहीं है। और फिर दूसरी चीज ये हैं। चित्त रोकने से रूकता हैं कि – न रोकने से रूकता हैं।

जिज्ञासु (लेखिका) = न रोकने से रूकता हैं। अगर चित्त न रोकने से रूकता हैं – तो फिर – रोकने का साधन क्यों बताया गया शास्त्रों में – तो फिर उसकी भी तो मर्यादा देखनी है – इसलिए – देखो – चित्त रोकने से रूकता तो हैं– मगर चित होकर रूकता हैं। और चित्त न रोकने से रूकता है – मगर चित्त होकर रूकता हैं। चित्त रोकने से रूकता तो है – मगर चित्त होकर रूकता हैं–चित्त का अस्तित्व बना रहता हैं। और चित्त को न रोका जाय तो चित होकर रूकता हैं – मानें भगवान ही हो जाता हैं। अरे भाई! बस – चित्त में डेढ़ त हैं – चित्त में सिर्फ डेढ़ त हैं। चित में से आधात निकाल लेने पर – आधात भला मुंह से कहो – ले उच्चारण करो – कह सकती है – उच्चारण होगा – भला – आधा त मुंह से कह सकती है उच्चारण होगा– आधा त भला मुंह से कहो – भैया ! जैसे – पानी में तो लहर होती हैं। वैसे ही – चित्त में से आधा त निकाल लिया जाय – तो – चित रहेगा? ऐसे अगर – लहर से जल निकाल लो तो क्या लहर रहेगी। अरे– लहर से जल निकाल लो – तो

क्या लहर रहेगी? ऐसे ही – चित्त में से आघात निकाल
जाय – तो क्या चित्त रहेंगा? आघात ही तो चंचलता हैं।
चिन्त – यही जो आघात है – यही तो चंचलता हैं। यदि
आघात निकाल लिया तो चंचलता गई। अगर चंचलता है तो–
आघात मुंह से कहो – कह सकती हैं? आघात यदि नहीं
उच्चारण होता – तो फिर चंचलता है ही नहीं। – यह – चित
के बिना जब चित्त नहीं – तब फिर चित्त को रोकने की क्या
जरूरत है। इसलिए – बात ये है जी – नदी तो स्वाभाविक
समुद्र की तरफ जा ही रही हैं – बीच में तुम डेम बना देते हो।
नदी में बांध डाल देते हो – तो नदी रूक तो जाती है –
बांधने से – मगर नदी होकर रूकती है। समुद्र होकर नहीं–
और खतरा भी बना रहता है – कि किसी वक्त बांध क्रेक न हो
जाय। नहीं तो हजारों गांव – फना फिल्ला हो जायेंगे।
सब जल मग्न हो जायेंगे। नदी रूकती तो है – मगर – नदी
हो कर रूकती है। और समुद्र के तरफ – इसको – नदी को
मोड़ना पड़ता हैं। क्या समुद्र के तरफ नदी को मोड़ने की
जरूरत पड़ती हैं। कि ये पहाड़ के तरफ जा रही है।
भैया ! इसको समुद्र के तरफ मोड़ो। चाहे पहाड़ के तरफ
जाये – चाहे जंगल के तरफ जाये – बहाव तो उसका स्वाभाविक
समुद्र की ही तरफ हैं। वह जा रही है – आज न पहुँचेगी कल
पहुँचेगी। ओ हो – विश्रान्ति तो नदी को समुद्र में ही हैं।
इसी तरह – चित्त एक नदी है – संकल्प विकल्प इसके दो
किनारे हैं। कल्पना इसकी धार है – निजानंद सागर के
तरफ – चित्त रूपी नदी स्वाभाविक जा रही हैं – बस – इसको
न रोको – मन या चित्त को न रोको – तो फट से उसी वक्त
चित हो जाता हैं। न रोकने पर चित हो जाता है। भगवान
ही हो जाता है – आत्मा हो जाता हैं। जब रोका गया तो –
रूक तो जाता है साधन से – मगर क्षणिक रूकता हैं। घंटा,
दो घंटा, चार घंटा, या कल्पान्तर – मगर चित्त का अस्तित्व

तो बना रहता हैं। साधन से तो रूकता है – मगर चित्त होकर रूकता हैं – कुछ करने से (साधन से) चित्त रूकता तो हैं – और कुछ ने करने से – चित्त – "चित" होकर रूकता हैं। भगवान ही हो जाता हैं। जी हाँ – सामान्य पद जो भगवान आत्मा है – इसके चिंतन करने के लिए – चित्त को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। चित्त को रोक कर के जो किया जाय – उसका नाम अभ्यास हैं और चित्त को न रोककर जो किया जाय – उसका नाम अनभ्यास है। यह – अनभ्यास ही आत्म चिंतन हैं। अभी किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया है कि – सामान्य पद जो अपना स्व स्वरूप आत्मा है – उसकी निष्ठा का क्या स्वरूप है? सामान्य पद जो अपना स्व स्वरूप आत्मा हैं – उसकी निष्ठा का क्या स्वरूप है। भैया ! इसका उत्तर यही हैं कि – मान्यता का सर्वथा अभाव। स्वप्न में भी अपने मैं पर कोई भी मान्यता न आये – यही आत्म निष्ठा का स्वरूप हैं। सामान्य पद जो आत्मा हैं – स्वप्न में भी – अपने – "मैं" – पर कोई मान्यता न आये यही आत्म निष्ठा का स्वरूप हैं।

प्रमादो ब्रह्य निष्ठायां न कर्त्तव्या कदाचन।
प्रमादो मृत्यु रूप्याः भगवान ब्रम्हा सुतः ।!

श्रुति कहती है – भगवान ब्रम्हा जी के पुत्र जो सनत्कुमार हैं – वे कहते हैं –

प्रमादो ब्रम्हा निष्ठायां न कर्त्तव्या कदाचन ।

ब्रम्ह निष्ठा का जो प्रमाद है – यही ज्ञानी की मृत्यु हैं। यह – यघपि ज्ञानी का जन्म मरण नहीं हैं। परन्तु – ज्ञानी की मृत्यु यही है कि – क्षण मात्र के लिए भी – अपने आप को – जीव या देह कुछ भी मान लेना – यही ब्रम्ह निष्ठा का प्रमाद है – और यही ज्ञानी की मृत्यु है – और ऐसा प्रमादन आना ही – यही वस्तुतः आत्म निष्ठा हैं। देखो – बना कि नहीं – हां – यही बात हैं। मिसाल के तौर पर – ब्याह हो जाना और बात हैं – और पति ब्रता होना – और बात हैं। ब्याह तो सभी

लड़कियों का होता हैं – मगर उन लड़कियों में पतिब्रता – कोई कोई होती हैं। भैया! पतिब्रता ही – पति के प्रति – निष्ठा हैं। पतिब्रता का क्या स्वरूप हैं।

उत्तम के बस अस मन माहीं ।
सपनेहुँ आन पुरूष जग नाहीं ।।12
राम अरण्य – दो –5 –पृ० 36।

यही पतिव्रता का स्वरूप है – यही पतिव्रता का लक्षण है कि
सपने हुँ आन पुरूष जग नाहीं ।।

इसी प्रकार – आत्म तत्व का बोध हो जाना ये और बात है – मगर आत्म निष्ठा हो जाना – ये और बात हैं। अरे – पतिब्रता का कोई बाजार थोड़ी लगा हैं।
पतिव्रता तो भैया!

हजारों लाखों में कोई एकाध होती हैं – और ब्याह सभी का होता है – इसी प्रकार – बोध हो जाना और बात है – मगर आत्म नैष्ठिक होना – और बात है। आत्म नैष्ठिक तो लाखों करोड़ों में कोई एकाध होते हैं। हालाँ कि – बोध का फल है– शोक मोह सागर से रहित हो जाना – तर जाना। परन्तु। –
बोध होने के बाद भी यदि उद्विग्नता या हृदय में शोक, मोह आदि विकार आते हैं – तो बोध पर कलंक नहीं है – बल्कि – बोध में निष्ठा का अभाव है। हाँ भैया। अब समझ में आ गया न। हाँ यही आत्म निष्ठा का स्वरूप है कि – स्वप्न में भी शोक, मोह नहीं करना। यह – यही आत्म निष्ठा का स्वरूप है।
तो – अनभ्यास के बारे में अभी बताया था न कि मन, बचन, कर्म द्वारा – किसी प्रकार का भी साधन न करना ही – अनभ्यास है – और अनभ्यास का ही नाम आत्म चिंतन है। अनभ्यास का ही नाम आत्म चिंतन है – जो स्वभावतः सर्व काल

में अपने आप ही हो रहा है। अरे – आत्म चिंतन का स्वरूप ही तो भगवान ने गीता में अर्जुन को बतलाया है कि –

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मा मनुस्मर युध्य च ।। गी. 8'–7

यहाँ कोई पोजीशन से बैठने को तो नहीं बताया – कि ऐसे आँख बंद करो – सुबह उठकर नहां धोकर बैठो – ऐसे टाइम में बैठो – ऐसा तो नहीं कहा।

सर्वेषु कालेषु मा मनुस्मर युध्य च। गी. 8–7

सर्वकाल में मेरा स्मरण भी कर – और युद्ध भी कर। बताओ– तो ये स्मरण क्या है? तो भगवान ने सर्वकाल का जो स्मरण बताया – अपना –

मां आत्मानं – माग्ड. माने – कर्म कारक –

मुझ आत्मा का सर्वकाल में स्मरण भी कर – और युद्ध भी कर भैया।

सर्वकाल में – सर्व अवस्था में – जो तत्व रहेगा निरंतर – उसी का तो शाश्वत स्मरण – सर्व काल में होगा। उसी का तो चिंतन होगा। तो सिवाय मुझ आत्मा के सिवाय मैं आत्मा के सर्व काल में दूसरा तत्व – रहता ही नहीं। और युद्ध भी कर– युद्ध एक ऐसी जिम्मेदारी की चीज कि – अपनी रक्षा – सारथी की रक्षा – घोड़ों की रक्षा – और शत्रु को मारना भी इतनी जिम्मेदारी होने के बावजूद भगवान कहते हैं कि – मेरा स्मरण भी कर – बताओ– यह तो कहा नहीं कि – इस तरह से भैया! तू दिन भर युद्ध कर – शाम को युद्ध विराम के पश्चात् स्नान वगैरह करके – शुद्ध कपड़ा पहन कर भैया! मेरा एक घंटा स्मरण कर – ऐसा नहीं बताया। नहीं कहा – लेकिन कहा जरूर – स्मरण भी कर – और युद्ध भी कर – तो कौन सा चिंतन है वो – स्मरण भी कर और युद्ध भी कर तो कौन सा चिंतन है – स्मरण का क्या स्वरूप है – चिंतन का क्या स्वरूप है – क्या प्रकार है। जो सर्व काम होते हुए भी भगवान का चिंतन होता है । सब कुछ होते हुए भी – भगवान का

चिंतन होता रहता है। तो–
"यही अनभ्यास है – इसी का नाम वस्तुतः आत्म चिंतनहै।"
इसीलिए लोग कहते हैं कि –
अभी पता चला हमको – कि भगवान का भजन बुढ़ापे में होता है – यह जो चिंतन मैंने बताया है – यह बुड्ढों का ही तो चिंतन है – पड़े--पड़े अपना भगवान का चिंतन करते रहो – यही भगवान का चिंतन है। जो पड़े–पड़े भगवान का चिंतन होते रहता है। भगवान का स्मरण करने के लिए साधन की जरूरत नहीं है।

पू. पिताजी (भैया) कहते हैं कि और इन्द्रियाँ भी शिथिल रहती है। तो परम पूज्य स्वामी जी कहते हैं कि – अगर बुड्ढों को यह चिंतन मिल जाये – तो सब के सब बुड्ढों का कल्याण हो जाए। अब से हम यही चिंतन बुड्ढों को बताया करेंगे। एक श्रोता – बुड्ढों का मन मानेगा – तब न वे विश्वास करेंगे। श्री परम पूज्य श्री स्वामी जी कहे कि – भगवान को तो मानते ही हैं – मानेंगे क्यों नहीं।
सामने एक गजल आ गई हैं।

बुजदिली के चक्कर में पड़कर, मैं अपने आप को खो बैठा।

पर सियन शब्द है ये – बुज कहते हैं फारसी में बकरी को – और बकरी का दिल इतना कमजोर होता हैं कि – अगर भेड़िया बकरी के सामने आ जाये – तो बकरी भागती नहीं – आँख बन्द कर केखड़ी रहती है –ले भैया खा ले। अब चार पैर वालों में तो बकरी – और परिन्दों में कबूतर। कबूतर के सामने अगर बिल्ली आ जाती हैं – तो वह भी आँख बंद करके बैठा रहता हैं। तो ले भैया खा ले। बकरी के जैसी दिल हो जिसका उसे बुजदिल कहते हैं।

तो बुजदिली के चक्कर में पड़कर –
मानें कमजोर दिल वालों के बीच में बैठ बैठ कर। मैं अपने आप को खो बैठा।

बुजदिली के चक्कर में पड़कर, मैं अपने आपको खो बैठा।
तस्वीर तमन्ना में फँसकर, जैसा था उसको खो बैठा ।।

बुजदिली = कमजोर दिल, डरपोकपन। तस्वीर = देह।तमन्ना= नाना प्रकार की कामना।

इलजाम लगाऊँ मैं किस पर, मिन्नत भी करूँ किसके आगे।
खुद पे खुद की कमबख्ती से, जैसा था उसको खो बैठा इलजाम = दोष।

हालाँकि वही हूँ जो मैं था, न बदला हूँ न बदल सकूँ।
लेकिन ये हकीकत है कैसी, बस इसको ही मैं खो बैठा।।3

हकीकत = सच्चाई।

अनबने अंदरे बुतरवाना, जाहिर जहूर पर गैर नहीं।
पर बेसमझी से समझ पड़े, उस बेसमझी को खो बैठा।।4

जहूर = सर्वत्र प्रगट।

ये जो चराचर प्रपंच हैं – इसको किसी ने बनाया नहीं हैं। और न खुद बना हैं। इसके अन्दर जो हकीकत है जो सच्चाई हैं– जो वास्तविक तत्व समाया हुआ है – सारा चराचर जो हैं उसके ऊपर पर्दा हैं। मगर इसको समझता कौन है? जो बेसमझहैं।

पर बेसमझी से समझ पड़े, उस बेसमझी को खो बैठा ।।3
जितने हैं जो मंदिर मस्जिद, मिलने के नहीं इबादत के

जितने हैं मंदिर, मस्जिद, गिरिजा घर–ये जितने हैं – परमात्मा के लिए – यहाँ पर आराधना की जाती हैं – ये परमात्मा से मिलने का स्थान नहीं हैं। ये परमात्मा के आराधना के स्थान हैं। मंदिर हो, मस्जिद हो या चर्च हो – उसकी चर्चा करने के लिए हैं – उसके बिचार करने के लिए हैं – प्रार्थना की जगह हैं –

उसकी आराधना के लिए – ये सब स्थान बने हुए हैं – चाहे मंदिर हों, मस्जिद हो गिरजा घर हो। ये मिलने की जगह नहीं हैं – ये आराधना का स्थान हैं।

जितने हैं जो मंदिर मस्जिद, मिलने के नहीं इबादत के।
मिलने की हविस जिस जापेखतम, जाबजा ये जाके खो बैठा ।। 5।।

हविस = चाह।

मानिन्द आइने खुद पे जो, दिखता वह मुझ से जुदा नहीं।
जंजीर मजहबी क्यों कैसी, इस ख्वाब खयाली को खो बैठा।।6।।

खयाली = वास्तविकता।

समझेगा वही सोहबत पसंद, बन गया दोस्त दर वेशों का ।
यह दिल दिमाग की बात नहीं, जो कहता है वह खो बैठा।।7।।

दर असल "मुक्त" है वही मुक्त है, – होता है वही जो मुक्त सही। पर बद्ध मुक्त हैं अफसाने, मैं दोनों को ही खोबैठा।।8।।
बुजदिली के चक्कर में पड़कर, मैं अपने आप को खो बैठा।
तस्वीर – तमन्ना में पड़कर, जैसा था उसको खो बैठा।।
ॐपूर्ण`मदः पूर्ण मिंद पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण`मेवा वशिष्यते।।
ॐशान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

गजल – अमलाई

हो गया आनंद दुनियाँ को रिझाकर क्या करूँ।
दिल मुनवर है तो दीपक राग गाकर क्या करूँ।।1।।

मुनव्वर = रोशन।

चक्रवर्ती कर दिया गुरू ने बताकर आत्म ज्ञान।
फिर भला महाराज दुनियाँ से कहाकर क्या करूँ।।2।।

हो गया आनंद दुनियाँ को रिझाकर क्या करूँ।
दिल मुनवर है तो दीपक राग गाकर क्या करूँ।।1।।
मुनव्वर = रोशन।
चकवर्ती कर दिया गुरू ने बताकर आत्म ज्ञान।
फिर भला महाराज दुनियाँ से कहाकर क्या करूँ।।2।।
रोम रोमों में रमा हैं, आत्मा मेरा सजन।
.खाक में भी रम रहा, खाके रमाकर क्या करूँ।।3।।
सब सजावट अरू बनावट का महल है आत्मा।
फिर भला हड्डी वो चमड़े को सजाकर क्या करूँ।।4।।
चढ़ गया अद्वैत का रंग, दिल में सुर्खीआ गई।
फिर भला मिट्टी में कपड़े को रंगाकर क्या करूँ।।
आ गई मुक्त को मस्ती, पढ़ के एक ताई का पाठ।
फिर भला इन पोथियों में सर पचाकर क्या करूँ।।

परम प्रकाशानुभूति

भाग – 1

बूझिय मोहि उपाव अब

मुझसे उपाय पूछा जा रहा है – कि उपाय बताओं कि – चित्रकूट से श्रीराम चन्द्र मर्यादापुरूषोत्तम – अयोध्यापुरी को किस तरह से लौटकर चलें तो भरत अपना दुर्भाग्य समझता हैं।

बूझिय मोहि उपाव अब सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेह मय बचन गुर उर उमगा अनुराग।।दो.255 अयो.पृ322

महात्मा भरत के इस प्रकार कहने पर – गुरू महाराज का जो हृदय था – वह एक दम प्रेम से – अनुराग से उमड़ पड़ा। महात्मा भरत की ऐसी गुरू निष्ठा – ऐसी अनन्यता – ऐसा प्रेम को देखकर – गुरू देव वशिष्ठ का हृदय प्रेम से – अनुराग से उमड़ पड़ा। वे कहते हैं अब –
तात बात फुरराम कृपाहीं। राम विमुख सिधि सपनेंहु नाहीं।।

भैया भरत – बेटा भरत! जो कुछ भी तुमने इतिहास बताया – भूतकाल का – राम कृपासें – सब बात बिल्कुल ऐसा ही हुआ हैं – लेकिन कहना यही हैं।

रामू विमुख सिधि सपनेहुं नाहीं।।

राम से विमुख होने पर – स्वप्न में भी सिद्धि नहीं होती। देखो – भगवान राम चराचर के अस्तित्व हैं। समस्त विश्व की आत्मा हैं। आत्मा किसको कहते हैं – सुनों! जिसके बिना जिसका अस्तित्व एकक्षण भर भी न रह सकें – वही उसकी आत्मा है – जी हाँ – आत्मा का अर्थ होता है – अस्तित्व। जी हाँ – जिस तरह से ये डण्ड़े का अस्तित्व जो है– वह लकड़ी है। अच्छा – क्योंकि लकड़ी से ही डण्डे की सिद्धि है – तो बिना लकड़ी के डण्डा क्षण भर भी नहीं रह सकता। तो फिर डण्डे की जो आत्मा है – वह लकड़ी है – डण्डे का अस्तित्व लकड़ी हैं। डण्डे में व्यापक लकड़ी हैं। मतलब ये हैं – जो जिसका अस्तित्व होता है – वही उसकी आत्मा है। जो जिसका अस्तित्व होता है – वहीं उसका कारण होता है। जो जिसका कारण होता है – वही उसमें व्यापक होता है। जो जिसमें व्यापक होता है – वही उसका आधार होता है। जो जिसका आधार होता है – वही उसका पति होता है। और वही उसका सर्वस्व होता है। माता, पिता, भाई बनु, चाहे जो कुछ कहलो। अस्तित्व ही सब कुछ होता है। भगवान सर्व के सर्व क्यों कहे जाते हैं – इसलिए कि वे सर्व के सर्व हैं। अस्तित्व होने के नाते – भगवान राम आत्मा – चराचर के अस्तित्व होने के कारण – चराचर के सर्व हैं। जैसे – इस डण्डे का जो अस्तित्व है – वो लकड़ी हैं अच्छा – तो – जब डण्डे का अस्तित्व लकड़ी हैं – तो डण्डे का पिता भी लकड़ी हैं। डण्डे की माता भी लकड़ी है – डण्डे का हितैषी मित्र भी लकड़ी है। गुरू भी लकड़ी है – जो कुछ भी समझ लो – और इस डण्डे में व्यापक भी लकड़ी है – डण्ड़े का

कारण भी लकड़ी है। तो लकड़ी डण्डे का सर्वस्व हुआ। पा रक्षणे धातु से – पति शब्द सिद्ध है। तो – "पति रक्षतीति पति" जो रक्षा करें वही उसका पति होता है। तो लकड़ी से डण्डे की रक्षा है – लकड़ी जो है डण्डे का पति भी है। अच्छा– अब रह गई बात विमुखता सन्मुखता की। तो – राम विमुख सिधि सप नेहुं नाहीं। यदि यह डण्डा लकड़ी से विमुख हो जाय तो – विमुख हो जाने पर फिर डण्डा ही नहीं रहेगा – फिर सिद्धि क्या? डण्डा ही खतम हो जायेगा – फिर। विमुख होना मानें अलग होना समझना जरा – यह दृष्टान्त समझ में आ जायेगा – तो फिर आगे भी समझ में आ जायेगा। माने – डण्डा का लकड़ी से विमुख होना ही माने डण्डा अपने को लकड़ी से अलग माने – यही डण्डे का लकड़ी से विमुख होना है। जब डण्डा लकड़ी से अलग हो गया –तो डण्डा ही खतम हो गया। लकड़ी से विमुख हो गया – जब विमुख हो गया तो डण्डे की सिद्धि कैसे होगी, वो खतम हो गया। अच्छा – लकड़ी के अब सन्मुख होना क्या है? डण्डा अपने को डण्डा न मानकर – डण्डा यदि अपनें को लकड़ी जानता है – हमेशा इन शब्दों पर ध्यान देना चाहिए – मानने और जानने पर। देखो – जो चीज मानी जाती है – समझना – वह कल्पित होती है। वह अस्तित्व हीन होती है – तो डण्डा अपने आप को यदि डण्डा मानता है तो फिर अस्तित्व हीन है – डण्डा तो है ही नहीं – तीन काल में। माने डण्डा का जो असली स्वरूप है – याने वास्तविक स्वरूप है – वो लकड़ी है। तो डण्डा जब अपने आप को जानने चलेगा – तो डण्डे को डण्डा मिलेंगा कि – डण्डे को लकड़ी मिलेंगी? श्रोता – लकड़ी मिलेंगी। हाँ – लकड़ी मिलेगी – ये बात – तो डण्डा – यदि अपने को डण्डा मानता है – तो इसकी सिद्धि नहीं – विमुख हो गया – इसकी सिद्धि नहीं – ये बात – और डण्डा यदि अपने को लकड़ी जानता है – तो यही लकड़ी के डण्डा का सन्मुख होना है। जी हाँ – इसी तरह –

राम विमुख सिद्धि सपनेहुं नाहीं।

इसी प्रकार – जीव यदि भगवान राम आत्मा से अपने आप को भिन्न मानता है कि – परमात्मा भिन्न है – मैं भिन्न हूँ – परमात्मा और है – मैं और हूँ – यदि ऐसा मानता है जीव – तो जीव ही खतम हो जाता है। इसको दूसरे तरीके से समझो। अरे भाई – शिव – समझना – जीव – जो यह भाव– जीव जो भाव है – यह भाव – स्व में है कि – यह भाव पर में है। अरे भाई ! जीव जो यह भाव है – यह भाव – स्व में है– कि पर में है। अभी – गुल नहीं खिला – हम समझ गये – पता लग गया।

देखो – शिव – कोई भी यदि अपने आप को जीव मानता है – या कहता है – कि मैं संसारी जीव हूँ – तो ये मानकर कहता है – कि जानकर कहता है? श्रोता – मानकर। मैं संसारी जीव हूँ – अगर ऐसा कहता है तो मानकर कहता है कि जानकर कहता है – अगर मानकर कहता है – तो ये जो माना है – तो जानकर के माना है कि – सुनकर के माना। समझना जरा – हमारे यहाँ तो भैया! पढ़ाई होती है। समझना जरा – अरे भाई! यदि कोई कहता है कि – मैं संसारी जीव हूँ – तुम जो कहते हो कि – मैं संसारी जीव हूँ– जैसे मैं डण्डा हूँ। तुमने मैं संसारी जीव हूँ माना। तो अपने आप को – अपने मैं को माना है – इसलिए कहता है कि – मैं जीव हूँ। या – अब बिना मैं के किसी की सिद्धि नहीं होगी या– अपने आप को जीव जाना है – इसलिए कहते हैं कि –मैं जीव हूँ? या – अपने आप को जीव माना है – इसलिए कहते हो कि – मैं जीव हूँ। अरे – जीव माना है – कि जीव जानाहै

अपने मैं को अपने आप को श्रोता – अपने आप को जीव माना है – इसलिए कहता हूँ कि – मैं जीव हूँ। अच्छा – ये जो माना है तुमने – ये किसी से सुनकर के माना है – या जानकर के माना है? श्रोता – सुनकर के माना है। तो फिर श्रीमान जी! सुनी हुई चीज जो होती है – सुनकर करके जब माना है तो इसका प्रमाण क्या है – कि मैं जीव हूँ – सुनकर करके माना है तो। अरे भाई! सुनी हूई चीज तो मन गढ़त होती है– कल्पित होती है – वैकल्पिक होती है – अच्छा – अब तुमने जीव माना किसको? श्रोता – मैं को – मैं को। "मैं" को – अब जीव जब न माना – तो क्या बचा। श्रोता – "मैं" बचा। और फिर अगर "मैं" – को निकाल लिया – तो जीव कहाँ गया? श्रोता – जीव का अस्तित्व ही गया। तो फिर– जीव का अस्तित्व जीव हुआ कि – जीव का अस्तित्व "मैं" हूआ। श्रोता – जीव का अस्तित्व – "मैं" – हुआ। इसलिए –

राम विमुख सिधि सपने हुँ नाही। पृ. 322

अभी मैं बता चुका कि – जिसके बिना जो सिद्ध न हो– वहीं उसका राम है – वही उसका भगवान है – वही उसकी परमात्मा है – वहीं उसका अस्तित्व है – वही उसका सब कुछ है। तो जीव यदि भगवान से अपने आपको भिन्न मानता है – तो भगवान से अपने आप को भिन्न मानना ही – यही भगवान से जीव का विमुख होना है – और कभी वह सुखी नहीं रह सकता – और न कभी उसकी सिद्धि हो सकती है। अच्छा – अब सन्मुख होना क्या है? – देखो – एक ही चीज है भैया! "मैं" का "मैं" ही है भला – और उस – "मैं" – को – उस अस्तित्व को – चाहे तुम जीव मान लो चाहे शरीर मान लो – चाहे स्त्री मान लो – चाहे पुरूष मान लो – ब्रम्हा, विष्णु, महेश– मानलो – रामकृष्णादिक भगवान, आत्मा परमात्मा – जो कुछ मान लो – वह है। अरे यार!

एता वानात्म संमोहो यद् विकल्पस्तु केवले।
आत्म न्नृते स्वमात्मानं मव लम्बो न यस्य ही।। 36
श्री मद् भागवत् – ।। –28–36 पृ. 642

अरे – विकल्प का कोई न कोई – अवलंब तो होना चाहिए – आधार तो होना ही चाहिए – उस पर तो विकल्प होगा ना – और विकल्प का स्वरूप होता है।

शब्द ज्ञान नुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः।

ये योग दर्शन का सूत्र है – भगवान पंतजलि का।

"शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः।"

कान से शब्द ही शब्द सुनाई पड़ै – और ढूंढने चलो तो न मिलै।

सर्व धर्मान्मरित्यज्य भामेकं शरणम व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। गीता
18–66

सर्व धर्मो का परित्याग करके मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूंगा। –ऐं–अर्जुन इतना पापी – भगवान श्री कृष्ण का सखा – और इतना पापी –
"सर्व पापेभ्यः" बहु वचन है।
तू मेरी शरण में आजा – सब पापों से – मैं तुझे मुक्त कर दूंगा – छुड़ा दूंगा। तो अर्जून के पास कितने पाप थे भैया! क्या पाप था – मगर कब छूड़ा दूंगा – कि –

"सर्व धर्मान् परित्यज्य"

धर्म कहते है – बाबूजी! धारणा को – धर्म नाम धारणा का है। तो – समस्त धर्म माने – समस्त धारणाओं को देखो – मैं शरीर हूँ – ये धारणा अंतः करण में होती है – या शरीर में – श्रोता – अन्त'करण में। भीतर तो है न। मैं शरीर

हूँ – मेरा शरीर है – मैं बालक हूँ, युवक हूँ, वृद्ध हूँ, स्त्री हूँ, पुरूष हूँ, जन्मता हूँ, मरता हूँ, काला हूँ, गोरा हूँ, लूला हूँ, लंगड हूँ, पंगु हूँ। अच्छा – माता हूँ, पिता हूँ, पति हूँ, पत्नि हूँ – जब शरीर की धारणा भई तो फिर शरीर धारणा में ये अनेकों धारणाएं आ गई। अच्छा – अब जब अपने को शुरू में– जीव की धारणा किया – कि मैं संसारी जीव हूँ – तो मैं आता हूँ जाता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ – कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, ज्ञानी हूँ, अज्ञानी हूँ इत्यादि धारणाएं आ गई। तो जैसा है वैसा अपने को न जानकर अरे – कुछ का कुछ मान लेना – यह पाप ही तो है। ऐ अनादि काल से – अनंत जन्मों से – यह जीव अपने को कुछ न कुछ मानते ही आया है – मानते ही चला आया है। मानता ही रहता है – मानते ही रहेगा– जब तक भगवान के सन्मुख यह नहीं हो जायेगा। तो भगवान के सन्मुख होना क्या है? अरे यार! अपने मैं को – अपने आपको – अपने स्वरूप को – अपने मैं को – जैसा का वैसा ही जानना – यही तो भगवान राम के सम्मुख होना है। और यदि "मैं" को कुछ मानता है, तो यही भगवान राम से विमुख होना है। और यही पाप है – समझ में आया। तो –

सन्मुख होय जीव मोहि जबहीं।
जनम कोटि अघ नासौं तबहीं।।

जहाँ इसने आपने आप को – "मै"– जाना सर्व का अस्तित्व तो अनंत जन्मों के जो इसके मान्यता रूपी पाप थे – वे सब नाश हो गये। और यही अर्जुन के लिए "सर्व पापेभ्यः" है। अच्छा भैया! और देखो भैया। जीव का स्वरूप जीव नहीं है – इसका कोई प्रमाण है – मानस प्रेमियों – चौपाई उठाओ।
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहजसरूपा।।
अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। तो जीव का सहज स्वरूप क्या है? अरे – डण्डे का सहज स्वरूप दार! डण्डा नहीं है – अरे – डण्डे का स्वरूप तो लकड़ी है। तो फिर – जीव

का सहज स्वरूप जीव नहीं है जीव का सहज स्वरूप – तो भगवान राम है – आत्मा है – अस्तित्व है – "मैं" – इसी तरह–

तात बात फुर राम कृपा हीं।
राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।।

जब गुरू देव ने ऐसे बोला – देखो भैया – जिज्ञासुओं! वस्तु तो एक है – जैसे एक दृषान्त है। बाबा की कमरी एक – ओढ़ों या बिछाओ – तकिया बनाओ या खुमरी ओढ़ो। किसी बाबा के पास एक काली कमरी थी। कोई चोर आया और उठाकर ले गया। बाबा जी थाना में जाकर रिपोर्ट लिखाता है– कि साहब हम तो लुट गए। मुहरम बैठा था – लिखने वाला मुंशी बैठा था – उसने कहा – क्या चला गया बाबा – उसने कहा – भैया! हमारा बिस्तर चला गया लिख ले भाई – हमारे ओढ़ने का चला गया दो – तकिया चला गया तीन – छत्ता चला गया चार। थोड़ी देर बाद कोई सक्स आकर उसको उसकी काली कमरी दे देता है – बाबा को। तो बाबा खुश होकर कहता है कि – साहब! हमारा जो गया था सब मिल गया। तेरा बिस्तर कहां है बाबा – फट से जमीन पर बिछा कर उस पर लेट गया– बिस्तर मिल गया। ओढ़ना कहां है बाबा उसे उठाकर ओढ़ लिया – ओढ़ना मिल गया। लपेट कर सिर के नीचे रख लिया – तकिया मिल गई। खुमरी बनाकर ओढ़ लिया – छत्ता मिल गई। तो बाबा की जैसी कमरी है ये। ओढ़ो या बिछाओ – या तकिया लगाओ – सब एक ही है। इसी तरह से – वस्तु ज्यों का त्यों है – और वह एक है।

यं शैवाः शैक्ताः समुपासते शिव इति ब्रम्होति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैय्यायिकः।।
अर्हनित्यथ जैन शासन रताः कर्मेति मी मांस काः।
सोऽयं वो विदधातु वांछित फलं त्रैलौक्यनाथोहरिः।।

अस्तित्व तो एक है – शैवाः – शैव जो हैं – शिव इस नाम से जिसकी उपासना करते हैं – जिस अस्तित्व की – जिस मैं की – शिव इस नाम से उपासना करते हैं। वेदान्ती – "ब्रम्ह" इस नाम से उपासना करते हैं। "बोद्धाः" – बौद्ध जो है– "बुद्ध" इस इस नाम से उपासना करते हैं। "नैय्यायिक" – जो हैं – "कर्ता" इस नाम से उपासना करते हैं। अरे – वस्तु तो एक है कोई किसी नाम से उपासना करते हैं कोई किसी नाम से उपासना करते हैं। – भैया! चीज ज्यों का त्यों है – परन्तु– क्या कहें–

आए थे एक धाम से, उतरे एकहि घाट।
हवा लगी संसार की, हो गए बारह बाट।।

क्वांर कार्तिक के महिने में – कुतियाँ बहुत से पिल्ले पैदा करती हैं – और मुहल्ले के पड़ोस के बच्चे क्या करते हैं – उन छोटे– छोटे बच्चों को पाल लेते हैं – और अपने – अपने नाम के – उन पिल्लों के गले में पट्टा बांध देते हैं। हालां कि वे पिल्ले जो पैदा हुए हैं – वे एक माँ के पैदा हुए हैं – मगर वे पट्टे के लिहाज से – एक पिल्ला – दूसरे पिल्ले का जानी दुश्मन हो जाता हैं। एक को पावे तो दूसरा खा जाये – और एक ही नाँ से पैदा हुए हैं। पट्टा नहीं मिलने देता – करोगे क्या। इसी किसम से संसार के अन्दर – जीव। अविधा रूपी कुतिया से – संसारी जीव पैदा हुए हैं – मगर संसार के अन्दर– जो भेंद वादी गुरू – पब्लिक का कोई दोष नहीं है – जनता गुमराह हो रही है – जनता का क्या दोष हैं। चाहे सही रास्ते पर ले जावो – या गलत रास्ते पर ले जावो – मगर भेदवादी आचार्यों ने – भेद वादी गुरूओं ने – अपने अपने नाम का गले में पट्टा बांध बांध कर के – आज देश की और समाज की और राष्ट्र की और विश्व की – क्या हालत हो रही है – यह बताने की जरूरत नहीं है। एक दूसरे के जानी दुश्मन बन रहे हैं।

एक को पायें – तो दूसरे को खा जायें। ये हालत हो रही है– लज्जा की बात है। जो हकीकत है – और जो सच्चाई हैं – जो वास्तविकता है – उसके तरफ कोई देखता नहीं है – आश्चर्य हैं। तात बात फुर – अभी जो पहले हमने डण्डे का और चौकी का दुष्टान्त दिया था। पहले डण्डे को जब तक यह ज्ञान न हो जायगा कि – दर असल मैं लकड़ी हूँ। अरे भाई! जो लकड़ी डण्डे में – वही लकड़ी तख्त में – वही लकड़ी टेबुल में – स्टूल में मेज में, कुर्सी में, दरवाजे में, अलमारी में और खिड़कियों में। अरे भाई! ये नाम रूप तो कल्पित हैं – अगर ये डण्डा समझे कि – जो जिसका स्वरूप होता है – वही उसका – "मैं" – होता है – अस्तित्व कहो – चाहे – "मैं" – कहो। डण्डे का – "मैं" – लकड़ी। जो – "मैं" – डण्डे का– वहीं मैं टेबुलका – वही मैं स्टूल का – वही मैं तख्त का – वही मैं दरवाजे का – अगर ये आपस में समझ लें – तो भला पानी पथ का मैदान क्यों बनें – और इस तरह से – हम और आप– सब – के सब – राजनीतिक क्षेत्र में – या धार्मिक क्षेत्र में – या नैतिक क्षेत्र में – या सामाजिक क्षेत्र में – या सारे विश्व में– अगर हम आपस में समझ लें कि – दर असल शरीरों का भेंद हैं। मगर सब शरीरों में जो – चैतन्य धन भूत हैं – जो आत्मसत्ता हैं – जो – "मैं" – नाम से हाजिर नाजिर है – जो "मैं" – नाम से प्रसिद्ध हैं – मशहूर हो रहा है – सारे आलम में जो प्रफुटित हो रहा हैं – अरे – वह तो एक हैं। अनेक नहीं हैं। अगर ये समझ लिया जाय – तो सारा मत भेद खतम हो जाय। समाज का मत भेद खतम हो जाय – और समाज की एकता – राष्ट्र की एकता – विश्व की एकता – कानून के बदौलत कानून के सहारे पर – यह एकता हर गिज नहीं होगी। यह एकता जो हैं – अध्यात्म के ही द्वारा हो सकती है – अन्यथा इस एकता का दूसरा कोई उपचार नहीं हैं। विद्वान हो पढ़े लिखे हो – अपने आप समझ लो – बस – इतना

कह देना ही काफी है। और फिर जिस चीज को तुम ढूंढ़ रहे हो – जब कि – हमारा तुम्हारा लक्ष्य भी एक ही हैं। ये दूसरी चीज है – नदियाँ किसी भी रास्ते से समुद्र के तरफ जाय – मगर जो मंजिले मकसूद है – सभी का आखिरी मुकाम है – समुद्र हैं – वह तो सब नदियों का एक ही हैं। भैया! चाहे वे तुम्हारे घर की गंदी नाली हो – अथवा महारानी गंगा हो – सबका आखिरी मुकाम समुद्र ही है। समुद्र में पहुँचकर तो कोई ऊँचा नीचा है नहीं। तो कोई नदी पूर्व से बहती हैं – तो कोई उत्तर से बहती है – तो कोई पश्चिम से बहती है। मगर यात्रा तो सबकी समुद्र के लिए ही हो रही हैं। तो नदियों का जो लक्ष्य हैं – नदियों की जो आखिरी मंजिल हैं – जो आखिरी मुकाम हैं – वह तो समुद्र ही हैं। तो फिर जिस नित्यानंद को तुम ढूंढ़ रहे हो – उसी नित्यानंद को – हम ढूंढ रहे हैं। हिन्दू हो या मुसलमान हो – या ईसाई हो या जैन हो – या बौद्ध हो – यहूदी हो – मूर्ख हो विद्वान हो – सन्यासी हो गृहस्थ हो – राजा हो भिखारी हो – नर हो नारी हो – कूकर और सूकर हो – कीट पतंग हो – अरे – समस्त प्राणी मात्र के जीवन का चरम लक्ष्य – नित्या नंद की प्राप्ति हैं। ये बात नहीं हैं कि – हम आनंद ढूंढ रहे हैं – और तुम दुःख ढूंढ रहे हो। ये बात तो है नहीं भैया! एक प्रवाह में जब कि – सारा संसार प्रवाहित हो रहा हैं। हाँ – उसके रास्ते मुस्त लिख – मुस्त लिख भले हों। अरे – कोई वैराग्य में ढूंढता है – कोई बाल बच्चे स्त्री पुत्रादिक में ढूंढता है – तो कोई धन में ढूंढता है। कोई शराब में तो कोई दुराचार में – कोई पुण्य में तो कोई पाप में – कोई मंदिर में तो कोई मस्जिद में तो कोई चर्च में, तो कोई पुराण में, तो कोई कुरान में, तो कोई बाईबिल में तो कोई कहीं पर। तो गरज ये है कि – अनादि काल से – जीव मात्र प्राणी मात्र – एक ही वस्तु की तलाश में है ना – जिसका नाम नित्यानंद हैं। तो फिर – जबकि हमारा

तुम्हारा घर एक – हमारा तुम्हारा मंजिले मकसूद एक – हमारा तुम्हारा रास्ता – भले ही अलग अलग हों – मगर जा तो सब एक के लिए ही हैं। और हमारा तुम्हारा जो मकसद – जो लक्ष्य है – जो मकसूद है – जो उद्देश्य हैं – वो तो हमारा तुम्हारा एक हैं। अगर हम तुम इस बात को समझलें – तो जगह जगह जो खूरे बियाँ हो रहीं हैं – जगह व जगह जो मतभेद हो रहे हैं – जगह व जगह – जो पानी पथ का मैदान होते जा रहे हैं – आज ये खतम हो जायगी। तो – आज ये भैया! इस चीज को जानने की जरूरत हैं – ये भगवान का कानून हैं – ये भगवान का विधान हैं – इसमें कोई मत भेद नहीं हैं। ये सार्व मौम सिद्धान्त है – और आज इसी की जरूरत है – तुम्हारे समाज को – तुम्हारे राष्ट्र को – तुम्हारे देश को – तथा तुमको। और हम – दूसरी चीज तुमको बतानें नहीं आए हैं। वैसे तो – कथा वाचकों की भैया। संसार में कथा वाचकों की क्या कमी हैं। परन्तु – जो असली चीज हैं– वास्तविक है – तथ्य हैं – उसको तो समझो – उसको तो जानों – खुद को जानों – और फिर – रामायण से बाहर की बात हम बता नहीं रहे हैं – आपको तो जिज्ञासुओं ! तो आज जरूरत इसी चीज की हैं – जो सच्चाई हैं – उसको नहीं देखते – तुम हमको अलग मानते हो अपने से – हम तुमको अलग मानते हैं। अरे यार ! शरीरों का भेंद हैं – लेकिन जो सब शरीरों का चैतन्य धन हैं – जो – "मैं" है – वह तो एक है ना। और जो – "मैं" – है वही राम है। सब शरीरों में वही रमा हुआ है। तो गुरू देव वशिष्ठ यही तो बता रहे हैं न– महात्मा भरत से।

तात बातफुर रामकृपाहीं। राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।।

शिव – दृष्टान्त दे रहे हैं – ये माला को देखो – इसमें फूल हैं – और अन्य कई रंग के फूल भी हैं। हालां कि धागे में

फूल अनेक हैं – मगर सब फूलों का जो आधार है – क्या वह भी अनेक है – वह तो एक है। गरज ये है कि – सब फूल एक ही धागे में गुथे हुए हैं – ये तो नहीं है कि – बड़े फूल में बड़ा धागा हो – छोटे में छोटा। फूल भले ही छोटे बड़े हों– मगर सब फूलों का जो
आधार है – सब फूलों में जो व्यापक है– वह धागा एक है। यह – तो अगर ये आपस में लड़ें तो – इनकी अकलमंदी है कि – बेवकूफी? श्रोता – बेवकूफी। जबकि यार! सबों का आधार एक ही है – जो भगवान राम – जो सर्व का अस्तित्व– चैतन्य धनभूत – मैं नाम से प्रसिद्ध मशहूर – जो मैं आत्मा इसके अन्दर है – वही "मैं" सर्व में। तो जिस तरीके से – एक ही धागा में – सारे फूल गुथे रहने की वजह से – इसका नाम हो गया माला – धागा निकाल लो तो माला खतम। तो – एक ही आत्मा रूपी धागें में ब्रम्हा से लेकर चींटी पर्यन्त – सारा नाम रूपात्मक प्रपंच – सारा जगत प्रपंच – फूल के समान – गुथा हुआ है। इसलिए इसका नाम हो गया संसार। जैसे एक ही धागे में गुथे रहने की वजह से – नाम हो गया माला। इसी तरह से – एक ही "मैं" – में – एक ही राम – एक ही आत्मा– एक ही चराचर का अस्तित्व रूपी धागा में – सारा चराचर गुथे रहने की वजह से – इसका नाम हो गया संसार। देखो – धागा जैसे निकाल लिया जाय तो फूल बिखर जाने से माला न रही। इसी तरह से – अपने आप को – अपने मैं को – अपने अस्तित्व को – अगर निकाल लिया जाय तो – संसार न रहेगा– संसार कहोगे किसको – सब बिखर जायेंगे – ये सब फूल हैं – फिर ये फूल न रहेंगे। कोई फूल बूढ़े हैं – तो कोई फूल जवान हैं – फूलों की सकलें भले ही जुदी जुदी हों – मगर इन फूलों की जो सकल है – अहा – इन सकलों की जो सकल है – क्या वह भी जुदा जुदा है। वह तो सर्व में एक है। यह – उसकी कथा हो रही है – उसकी व्याख्या हो रही है –

यह उसकी रामायण है। उसी तत्व का यहाँ प्रतिपादन किया जा रहा है। तो जिज्ञासुओं! भैया! इसको अब समझो – यार! अब तो समझने का युग है। यारो। सुनते–सुनते बहुत दिन हो गये – अब तो ये जमाना लद गया। यह विज्ञान युग है यारों। ये प्रेक्टिकल युग है। जबकि आज चंद्र लोक में झण्डा गड़ गया – कब तक सोते रहोगे। बुजुर्गो से मुद्दतें हो गई – सुनते सुनते चले आ रहे थे – आज तक कि – भगवान है, भगवान है, भगवान है – कहाँ है भगवान। आज का संसार तो– अनुभव करना चाहता है। ये प्रेक्टिकल युग है। अनुभव करो – और यदि अनुभव करने की कोई चीज है – और यदि देखने की कोई चीज है – प्रत्यक्ष रूप से देखने की कोई चीज है – तो भगवान आत्मा – तुम्हारा स्वरूप ही है। बाकी सब अफसाना है, कहानी है। सुनते रहो किसी चीज को – उसके मूल तत्व में घुसकर देखोगे – तो वह चीज तुमको वहाँ न मिलेगी। आज इसी चीज की जरूरत है। यह वही चीज है – जो तुम्हारे जीवन का चरम लक्ष्य है। चाहे वो राम कहो – कृष्ण कहो – भगवान कहो – आत्मा कहो – परमात्मा कहो – जो कुछ पसंद आये कह लो। ये तुम्हारे पसंदगी के लफ़्ज हैं– जो चाहो कह लो। मगर जो हकीकत है – जो सच्चाई है – जो वास्तविकता है – जो व्यापक तत्व है – वह सर्व का अपना आप है। और जिसका ये निरूपण हो रहा है। और जिसकी अनुभूति कराई जा रही है– इस चीज की जरूरत है भैया! जी हां – हम आपको रामायण सुनाने नहीं आए हैं – हम रामायण समझाने आए हैं – हम भागवत सुनाते नहीं – भागवत समझाते हैं। गीता सुनाते नहीं – गीता का अनुभव कराते हैं। उपनिषद सुनाते नहीं – उपनिषद की अनुभूति कराते हैं। हर एक चीजों का अनुभव कराना हमारा काम है। ये मिशन का भ्रमण ही इसी उद्देश्य से हो रहा है।

तात बात फुर राम कृपाही। राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।।1

सकुचउँ तात कहत एक बाता। अर्ध तजहिं बुध सर्वसजाता।।२
राम अयो. दो 254 पृ. 322

अब गुरू देव वशिष्ठ – अपने हृदय का जो मनोभाव है – जो कुछ कहना चाहते हैं – सभा के समक्ष अब रख रहे हैं। भैया भरत! तो –

सकुचउँ तात कहत एक बाता। अर्ध तजहिं बुध सर्वस जाता।।

यह संसार का नियम है कि – अगर सर्वस जा रहा है – सब कुछ जा रहा है – और कोशिश करने पर – उसमें से आधा मिल जाता है। तो संतोष कर लेना चाहिए कि सब नहीं तो आधा ही सही – बुद्धिमानी है – अक्लमंदी है ये। तो –

सकुचउँ तात कहत एक बाता। अर्ध तजहिं बुध सर्वस जाता।।

यहाँ पर तात्पर्य क्या है – गुरू देव के कहने का। क्योंकि - भगवान राम सर्व के सर्व हैं – सर्वस हैं। आह – शिव – देखो! चौथा दरबार जो – राजा जनक का हुआ है – चित्रकूट में - अंत में – आखिरी में – तो उसमें गुरूदेव वशिष्ट ने कहा है- श्री राम से –

प्रान् प्रान् के जीव के जिय सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि विधि वाम।।
राम अरो. दो. 290 पृ 338

भगवान! तुम प्राणों के प्राण हो – जीवों के जीव हो सुख के सुख हो अब केन की श्रुति आई हैं भगवति – इनकी भी दो बातें सुन लो–

ॐ केनेषितं। पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाच मिमां वदन्ति।
चक्षु श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।।
केनोपनिषद खंड 1 – पृ. 42

श्रुति प्रश्न करती है? वह कौन है – जो मन को प्रेरित करता है – एक स्थान से दूसरे स्थान को जो भेजता है – वह कौन है?

"केनेषितं पतति प्रेषितं मनः"

कौन मन को – ले आता ले जाता है – वह कौन है?

"केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
के ने षितां वाच मिमां वदन्ति
चक्षु श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।

केनो. म. । पृ 42

वह कौन है – जो वाणी को अभिव्यक्त करता है – वह कौन है? जो आँख – नेत्र को रूप विषय में जोड़ता है–कर्ण इन्द्रिय को–शब्द विषय में जोड़ता है –घ्राण इन्द्रिय को गंध विषय में जोड़ता है – जिव्हा इन्द्रिय को – रस विषय में जोड़ता है – त्वचा इन्द्रिय स्पर्श विषय में जोड़ता है।

केन – वह कौन है? "कौ देवः"

केनेषितं वाच मिमां वदन्ति।
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवोंः युनक्ति।।1।।

जो जोड़ता है इन्द्रियों को – जिस इन्द्रिय का जो विषय है – उस इन्द्रिय को उस विषय में जो जोड़ता है–

"कौ देवः" वह कौन है – वह कौन है?

तो दूसरी श्रुति इसका उत्तर देती है।

श्रोत्रस्य श्रोचं मनसो मनो य द्वाचो ह वाच
स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरति मुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लो काद मृता भवन्ति।।

केनोप. मंत्र –2– पृ. 42

"श्रोत्रस्यश्रोत्रं" – अरे वह वही देव है – जो कान का कान है– प्राणों का प्राण है – और चक्षु का चक्षु है – घ्राण का घ्राण है– जिव्हा की जिव्हा है – त्वचा की त्वचा है – हाथ का हाथ है – कर्ण का कर्ण है और सर्व का सर्व है।

हरे वही –
तुलसी का राम है।
सूर का श्याम है।
गोपियों का कृष्ण है।
मीरा का गिरधर है।
हिन्दुओं का ईश्वर है।
मुसलमानों का खुदा है।
ईसाईयों का ईसा है।
यहूदियों का मूसा है।
फारसियों का जरथसरू है।
जैनियों का अर्हन्त है।
बौद्धों का बुद्ध है।
और आस्तिकों का – "है" – है।
और नास्तिकों का "नहीं" है –
और सर्व का – "मैं" है। वहीं है–
और दूसरा कौन कहाँ से आयेगा।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच स उ प्राणस्य प्राणा–।
केनोप ख. 1 2 पृ. 42

तो इसलिए – कहने का मतबल ये है कि – भगवान राम ही हुए सर्व के सर्व। तो भगवान राम ही हुए सर्वस्व।
तमी तो गुरू महराज कहते हैं–

सकूचउँ तात कहत एक बाता।

अर्ध तजहिं बुध सर्वस जाता।।

देखो – जिस समय भगवान राम का अवतार होता है – रामावतार माता कौशल्या के गर्भ से – सम्राट दशरथ कि यहाँ– वहाँ पर एक चौपाई आती है – क्योंकि दुनियाँ टूट पड़ी। दर्शन के लिए – मंगल मनाने के लिए – वहाँ पर एक चौपाई आती है–

सर्वस दीन सब का हू। जेहि पावा राख नहिं ताहू।।

जो है सो गोसाई जी महाराज कहते हैं – क्या कहते हैं – कि–

तो – सर्वस दान दीन सब काहू।

अरे – सर्वस कौन – भगवान राम –। अब हम गये दर्शन करने – तो इच्छा भई – भगवान का दर्शन करें – अलौकिक छबि थी। और भगवान राम को – हमने गोद में लिया और दर्शन किया – और तुम पास में खड़े थें – तो फिर हमने उस सर्वस राम को देखा और देखकर के तुम को दे दिया। तुम्हारे गोद में दे दिया – और तुमने दर्शन करके – तीसरे को दे दिया – तीसरे ने चौथे को दे दिया – यही क्रम दिन भर वहाँ चलता रहा। मानें – अरे – हमने जब सर्वस राम को पाया – तो देख कर के उनको दे दिया – अपने पास नहीं रखे – तुमने उनको दिया – उनने उनको दिया – बस यही क्रम दिन भर लगा रहा – आनंद मंगल होता रहा – क्योंकि भगवान राम सर्व के सर्व हैं। इसलिए सर्वस हैं।

प्रान प्रान के जीव के जिय सुख के सुख राम।

तो फिर – इसीलिए गुरूदेव वशिष्ठ महाराज – महात्मा भरत से कहते हैं।

समुचऊँ तात कहत एक बाता। अर्ध तजहिं बुध सर्वस जाता।।

अब गुरूदेव वशिष्ठ – अपने हृदय का भाव– सभा के समक्ष प्रगट करते हैं।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई।
फेरअहिं लखन सीय रघुराई।।3

भैया भरत ! हमने तो यही निश्चय किया है कि – तुम दोनों भाई जो श्रीराम के लिए चौदह वर्ष का वनवास हुआ है – तो उनके बदले में तुम और शत्रुघ्न – चले जावो वन को – तुम भोग डालो वनवास चौदह वर्ष का – और भगवान राम – महारानी सीता को लेकर के – लक्षमण जी सहित – अयोध्या पुरी को लौटें। तो –

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरअहिं लखन सीय राघुराई।।3
सुनि सुवचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता ।।4
जिस समय भरत और शत्रुघ्न ने –गुरूदेव की वाणी कोसुनाहैं।

मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा।।5।।

इतनी प्रसन्नता हुई कि – मानों सम्राट की जो मृत्यु हो गई थी– वे मानों फिर से जीवित हो गए – और श्रीराम आयोध्या के राजा हो गये। महात्मा भरत कहते हैं।

अंतर जामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान।।
दो०256 राम आयो० पृ० 323

गुरूदेव! श्री चरणों में मेरा निवेदन है कि – भरत का –

कानक करउँ जनम भरिबासू।
एहि ते अधिक न मोर सुपासू। 18

गुरू महाराज ने तो – चौदह ही बरस के लिए कहा था – लेकिन – भरत और शत्रुघ्न तो – जीवन पर्यन्त जंगल में रहने के लिए तैयार खड़ें हैं। इसलिए – और कहना ये है कि – ये बात मैं हृदय से कह रहा हूँ कि उपरी तौर से कह रहा हूँ – इसके लिए तो – भगवान राम अन्तरात्मा हैं। श्रीराम अन्तर्यामी हैं – सर्व के "मैं" – हैं – सर्व की आत्मा हैं सर्व के साक्षी हैं

सर्व के अन्तर के साक्षी हैं। उनसे कोई बात छुपी नहीं हैं।

अन्तर यामी राम सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जो फुर कहहु त नाथ निज कीजिअबचन प्रवान।।
दो०256 राम० अयो० पृ० 323

आपने जो कहा कि –

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिंलखन सीय रघुराई।।

तो गुरूदेव से यहाँ मेरा यही निवेदन है – श्री चरणों में कि – अब अपने बचन को वापस न लीजिए – अलग न हटिये – इस बचन को प्रमाणित करके दिखाइये। अभी भरत जाने को तैयार हैं – जीवन पर्यन्त जंगल में रहने को तैयार हैं। अब इससे बढ़कर के क्या स्वर्ण अवसर आयेगा।

अंतर जामी राम सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जो फुर कहहु त नाथ निज की जअबचन प्रवान।।
दो०256 राम० अयो० पृ० 323

जिस समय महात्मा भरत ने ऐसा कहा है – तो गुरू महाराज की जो बुद्धि हैं – वह चक्कर खा गई। क्योंकि – उनको क्या पता था कि – भरत तैयार हो जायेगा – बन में जाने के लिए– उन्होने इस बात को – ऐसे ही स्वाभाविक ही – कह दिए थे। वे पहले ही कह दिए थे कि –

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई।

अब सभा सन्न है – सभा बिलकुल शांत बैठी हैं – सभा एकदम गंभीर हो गई। तो मानस कार यहाँ पर खाका खींचते हैं – चित्र खींचते हैं – क्या?

भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति ठाढ़ तीर अबला सी।12
गा चह पारजतन हियँ हेरा। पावत नाव न बोहित बेरा।13

धन्य है भरत की महिमा को – भरत के हृदय में गुरू महाराज के प्रति इतना अनन्य प्रेम हैं। इतनी अनन्य प्रीति – इतनी

अनन्य निष्ठा। तो मानस कार कहते हैं –
भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति ठाढ़ तीर अबला सी।।12

भरत की जो महिमा है – गुरू प्रेम हैं – गुरू निष्ठा है– वह कैसा हैं – जल रासि – मानें समुद्र के समान।

भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति ठाढ़ तीर अबलासी।।12

समुद्र के समान – अब कहते हैं – गुरू महाराज की जो बुद्धि है – ये कैसी है – अबला स्त्री के समान।
भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति ठाढ़ तीर अबला सी।।12

गुरू महाराज की जो बुद्धि है – वो अबला स्त्री के समान – भरत की महिमा रूपी सागर –समुद्र के किनारे पर खड़ी खड़ी विचार कर रही हैं। क्या भाव? महात्मा भरत ने अपने प्रेम में– ऐसे फांस दिया गुरू बाबा को – मौनं स्वीकार लक्षणम्। क्योंकि – ये तो उन्होंने ऐसे ही स्वाभविक कह दिए थे कि – बेटा! तुम दोंनों वन को जावों – चौदह वर्ष का वनवास भोग डालो – अैर तुम्हारे बदले में – राम लक्षमण सीता – अयोध्या को लौटें। यहाँ भरत तैयार बैठे हैं – एकदम। एकदम उठ के खड़े हो गये – महराज! आज्ञा दीजिए – जिन्दगी भर हम वन में रहने के लिए तैयार हैं। तो अब चक्कर खा गई बुद्धि वशिष्ठ जी महाराज की। कि – अब क्या करें – अब क्या उत्तर दें। तो – अब इसको बनाया मानस कार ने समुद्र। भरत की इस महिमा को बनाया समुद्र – औा गुरू महाराज की बुद्धि अब काम नहीं कर रहीं हैं – इसको – बनाया – अबला याने स्त्री। तो – महिमा रूपी समुद्र के किनारे पर – गुरू वशिष्ठ जी की बुद्धि रूपी जो स्त्री हैं – खड़े खड़े सोच रही है कि – मैं उस पार जाऊँ कैसे। मानें – इसमें से निकलें कैसे –अब क्या उत्तर दें – कैसे? ये जो उलझन आ गई ह– इसको मैं सुलझाऊँ कैसे?

भरत महा महिमा जल रासी।
मुनि मति ठाढ़ तीर अबलासी।।
गा चह पार जतन हियँ हेरा।

महिमा रूपी सागर को तो पार करना चाहती है – माने कि – इस उलझन को सुलझाना तो चाहती है – महिमा रूपी सागर को पार करने के लिए – साधन होना चाहिए। तो –
पावति नाव न बोहित बेरा। गा चह पार जतन हियँ हेरा।।
न तो नाव है – न बोहित माने जहाज है – न बेड़ा है – भला महिमा रूपी सागर को बुद्धि जो है – गुरू देव की बुद्धि है – स्त्री के समान – इस महिमा रूपी सागर को कैसे पार कर सकती है – तो खड़े खड़े सोच रही है – विचार कर रही हैं।

भरत महा महिमा ~~महिम्म~~ जल रासी 1
मुनि मति ठाढ़ तीर अबला सी 2

या चह पार जतन हियँ हेरा। पावत नाव न बोहित बेरा 3
और करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई 4
जब गुरू महाराज की बुद्धि चक्कर खा गई – तब भला संसार में किसकी ताकत है – ऐसा कौन है कि – जो भरत की महिमा को पार कर सकें। अरे – तालाब की जो सीपी है – उसमें कोई समुद्र को भरना चाहे – तो भला कैसे भरेगा?

और करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई।।4
भरत मुनिहि मन भीतर भाए।

तो गरज ये कि – जब किसी ने विरोध नहीं किया – और भरत तैयार बैठे हैं – तो मौनं स्वीकृति लक्षणं तो अब इससे पता चल गया कि – सर्व सम्मति से प्रस्ताव पास हो गया। जब किसी ने कुछ नहीं कहा – तो सभा को और महात्मा भरत को – गुरू महाराज वशिष्ठ – सबको लेकर अपने अनुकूल समझकर –

सबको अनुकूल जानकर – सबके सबको लेकर – अब मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के पास आते हैं।

भरत मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए 5

अब सबके सबको लेकर – भरत की जो सभा थी – उन सबको– सारी सभा को लेकर – गुरू महाराज वशिष्ठ – अब श्रीराम के पास आते हैं। तो भगवान श्रीराम उठकर के – गुरू महाराज को प्रणाम करते हैं। यथा योग्य जहाँ पर जो स्थान मिला – सब अपना अपना बैठ जाते हैं। अब भरत की सभा का विसर्जन होता है – और राम की सभा आरम्भ होती हैं। तब गुरू महाराज कहते हैं – श्री राम से –

"सबके उर अंतर बसहु।" क्योंकि राम जो हुए – खाली चित्रकूट में बसहु – ऐसा नहीं – अयोध्या में बसहु ऐसा नहीं।

सबके उर अंतर बसहु जानहु भाव कुभाव।
पुरजन जननी भरत हित होय सो करिय उपाव 257

राम – भैया! सारे चराचर के तुम निवासी हो – तुम सारे चराचर के हृदय में निवास करने वाले हो। तो सबके हृदय में निवास करने वाले हो तो सबके हृदय के भाव कुभाव को जानत हो। तुमसे कोई बात छुपी नहीं हैं – इसलिए – पुरजन, जननी, और भरत – इस सभा में – राम के न्यायालय में – राम के दरबार में – ऐसा न्याय हो –कि पुरजन – अयोध्यापुरवासियों का भी हित हो – और जननी माताओं का भी हित हो – और भरत का भी हित हो – कहीं भी विरोधा भास न हो – जिसमें सबों का हित हो – ये न्याय राम दरबार में – राम के न्यायालय में होना चाहिए। तो जिज्ञासुओं! तो भैया! ऐसा न्याय तो राम ही कर सकता हैं। दुनियाबी जो अदालते हैं – संसारी जो न्यायालय हैं – उनमें तो कोई हारता हैं – तो कोई जीतता हैं। किसी की विजय होती हैं – तो किसी की पराजय होती हैं। कोई रोता है – तो कोई हँसता हैं। दुनियाबी अदालते जो होती हैं – संसारी अदालते जो होती हैं

उनमें ये बात होती हैं। मगर – भगवान राम का जो न्यायालय है – तो भैया वहाँ न – न किसी की जीत है, न किसी की हार हैं। इसीलिए –

"पुरजन जननी भरत हित" – ऐसा इंसाफ – ऐसा फैसला – ऐसा न्याय – तो राम ही कर सकते हैं – दूसरा और कौन करेगा। जी हां – क्यों ! अरे यारों ! जिन अदालतों में नकल पेश होती है भला वहाँ – असली फैसला कैसे सुनोगे। कहिये जनाब ! कहाँ गए थे आप – दाउ साहब। आप कहाँ गये थें। अरे भाई ! एक जरा – एक नकल लेनी थी – इसलिए मैं गया था। अपील करनी है – नकल पेश करना हैं। भला जिस मुकदमें में नकल पेश कर रहे हो – तो फिर नकल पेश करने का जो तुमको – इन्साफ मिलेगा – न्याय। अरे – नकल से नकल मिलेगा यार ! कि नकल से असल। ये बात है समझ लो अब – परन्तु – भगवान राम के न्यायालय में – अदालत में तो भैया ! असलें असल है –

अ – हा – हा।

सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव।
पुरजन जननी भरत हित होय सो करिअ उपाव।।

दो०257 राम० अयोध्या पृ० 323

भैया हे राम ! ऐसा उपाय करो – ऐसा न्याय करो – ऐसा विचार करो – ऐसा फैसला करो – कि जिसमें सबका हित हो। अयोध्या पुरवासियों का भी –माताओं का भी – और महात्मा भरत का भी – क्योंकि तुम सबके हृदय के निवासी हो – तुमसे कोई बात छुपी नहीं हैं।

सबके उर अंतर बसहु जानहु भाव कुभाव।
पुरजन जननी भरत हित होयसो करिअ उपाव।।दो 257

राम! चराचर के तुम निवासी हो – आत्मा होने के नाते – चराचर के तुम अस्तित्व हो। सबके हृदय में निवास करने वाले हो – और फिर – जब हृदय के निवासी हो – तो हर एक के

हृदय के – भाव और कुभाव को भी तुम जानते हो – कोई बात तुमसे छुपी नहीं है – इसलिए – राम के इस न्यायालय में जहाँ पर चराचर के अस्तित्व श्रीराम न्यायाधीश विराजमान हैं – तो फिर राम के इस न्यायालय में – न्याय भी ऐसा ही हो कि– कहीं पर विरोधा भास न आये। पुरजन – अयोध्यापुर वासियों का भी हित हो – और जननी माताओं का भी हित हो – और भरत – महात्मा भरत का भी हित हो – मानस प्रेमियों – भैया! दुनियाबी जो अदालतें होती हैं – संसारी जो न्यायालय होते हैं– इनमें तो विरोधा भास होना स्वाभाविक हैं। क्योंकि – जब न्यायधीश परिछिन्न है – एक देशीय है – सीमित है – तो फिर– उसका न्याय भी सीमित ही होगा। किसी की हार होती हैं – तो किसी की जीत होती हैं– सरकारी अदालतों में – जिसकी हार होती हैं – वह रोता हैं – जो जीत जाता हैं – वह हंसता हैं। परन्तु – भगवान राम के न्यायालय में – न किसी की हार हैं – न किसी की जीत हैं – हार जीत का तो प्रश्न ही नहीं हैं। हार हैं। तो सभी की है – और जीत हैं तो सभी की हैं। मगर किसी की हार हो किसी की जीत हो – ऐसी बात नहीं हैं। क्यों नहीं हैं – क्योंकि –

सबके उर अंतर बसहु जानहु भाव कुभाव।

जो चराचर का अस्तित्व – जो सर्व का सर्व – पुरवासियों का जो अस्तित्व – जो राम – जो "मैं" – पुरवासियों का – वहीं माताओं का – वहीं महात्मा भरत का – और वहीं अस्तित्व वही राम सारे विश्व का – तब फिर विरोधा मास का काम ही क्या हैं।

सबके उर अतंर बसहु जानहु भाव कुभाव।

जब राम कहें – तब राम का मतलब अस्तित्व समझना। राम के मानें होते हैं – "है" – के। वैसे तो हम व्याख्या में बता ही चुके हैं कि – राम नाम आत्मा का है। और हम मंगला चरण में कहते हैं न कि – नित्य प्रति –

सत्यं वदामि च भवान् अखिलान्त रात्मा।

मानस कार कहते हैं कि – "अहं सत्य वदामि"

भगवान् मैं सत्य कहता हूँ – कि – सारे विश्व की तुम आत्मा हो – तुम – सारे चराचर की आत्मा हो – याने सर्व के "मैं" – हो – अस्तित्व हो। और सर्व के सर्व हो। तो राम का जो लक्ष्य है – वह – "हैं" – हैं – अपना स्वरूप – "मैं आत्मा" – लक्ष्यार्थ हैं।

अच्छा – और कल जो है भाग त्याग लक्षणा के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रक्रिया थोड़ी सी बताई गई थी।

तद् वाच्यस्तु रकारः स्यात मकारास्त्वं पदार्थ वान।
तयोः संयोजन मसि त्यर्थे तत्व विदोः विदुः।।

और समझ लो इसको –

तद् वाच्यस्तु रकारः स्यात मकारास्त्वं पदार्थ वान।

तत्व मसि महा वाक्य पर – यह करिका आती है। तत् माने वह– त्वं माने तू – और असि माने –"है" – । "तत्वमसि" तत् – त्वं – असि। तत् का अर्थ हैं – वह । –त्वं का अर्थ है –तू –। और असि का अर्थ है – "है" – "तत्व मसि"?

राम में लगावो –

तद् वाच्यस्तु रकारः स्यात मकारास्त्वं पदार्थ वान।

तत माने वह – र जो है न – इसमें अ छिपा हुआ हैं। दीर्घाकार – र और अ मिलकर रा होता है। र माने वह – और म – माने तू – अच्छा – अब है क्रिया लानी हैं। पहले र और म को अलग अलग कर दो – र का अर्थ हो गया – वह – और म का अर्थ हुआ तू। अब दोनों को एक में जोड़ दो। र + अ + म + – "है – वह – तू – है। वह – तू – है। जब रा और म जुड़ गया – तो उसका अर्थ हो गया – "है" – अस्तित्व। तो अब ये अर्थ हुआ कि "राम का अर्थ हुआ – अस्तित्व"।

तद् वाच्यस्तु रकारः स्यात मकारास्त्वं पदार्थ वान।

तयोः संयोजन मसि त्यर्थे तत्व विदोः विदुः।।
तत्व विदोः विदुः।

हम नहीं कहते ऐसा – तत्व विदोः विदुः।
बड़े बड़े आत्म वेत्ता पुरूष – ऐसा कहते हैं। देखो – इसीलिए– हम हमेशा कहा करते है न कि – संत महात्मा जो होते हैं – वे सुप्रीम कोर्ट होते हैं। एक लोवर कोर्ट होता है– एक हाई कार्ट होता हैं – एक सुप्रीम कोर्ट होता है। एक लोवर कार्ट – तहसील या जिले में जो कचहरी होती है – वह लोवर कोर्ट है – जबलपुर में हाई कोर्ट है – और केन्द्र में – देहली में – राजधानी में सुप्रीम कोर्ट होता है। तो – सुप्रीम कोर्ट का जो न्याय होता है – सुप्रीम कोर्ट का जो फैसला होता है – वह गवर्न्मेंट को भी मान्य होता है। उसको – गवर्न्मेन्ट भी मानती है भाई! तो महानपुरूष जो होते है– संत महात्मा जो होते हैं– वे सुप्रीम कोर्ट होते हैं।
"तत्व विदः" – यहाँ पर कहा गया है। श्रुतियाँ, स्मृतियाँ – अपनं ऊपर जिम्मेदारी नहीं लेती हैं। यहाँ तक कि – भगवान भी नहीं लेते हैं। भगवान श्री कृष्ण भी अपने ऊपर जिम्मेदारी नहीं लेते हैं। वे कहते हैं – बड़ें बड़े महान पुरूष, तत्व वेत्ता, आत्म वेत्ता जो हैं – उन सबों ने ऐसा कहा है – यहाँ पर "तत्व विद्" कहा है। र माने वह – म माने तू – और राम माने – "है" – "अस्तित्व"।

ना सतो विद्यते भावोना भावो विद्यते सतः।
अभयो रवि दृष्टिोऽन्तस्त्वन योस्तत्व दर्शिभः।। गी०2–16

"तत्व दर्शिभिः" सत्या सत्य के लक्षण में बताया है। गीता के दूसरे अध्याय में – कि जो पदार्थ सत्य है – जिसका कभी नाश नहीं होता। जिसका कभी अभाव नहीं होता – वह सत्य हैं। और जो भाव रूप न हो – वह असत्य हैं। तो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं – ये कौन कहते हैं। इसको किसने कहा

हैं – किसने देखा हैं। सत्या सत्य का लक्षण – तो कहते हैं–
"तत्व दर्शिभिः – महात्मभिः"

महान पुरूष ने तत्व वेता पुरूषों ने ऐसा कहा है – उन सबों ने ऐसा देखा है – उन्होंने – उन सबों ने इसका अनुसंधान किया है – इस चीज का। श्रुति भी कहती हैं।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।। 13।।
ईशा वास्योपनिषद् मंत्र।3 – पृ०35

"इति शुश्रुम धीराणां – माने महान पुरूषो के मुख से हमने सुना हैं। पुरूषोत्तम योग के पहला अध्या में आता हैं –
ऊर्ध्व मूल मधः शाख मश्वत्थं प्राहु रव्ययम्। गी० 15–1
प्राहुः क्रिया है – याने महात्माओं ने ऐसा कहा हैं। जी हाँ – तो – इसलिए – राम का अर्थ हुआ – "अस्तित्व" चराचर का अस्तित्व – चराचर की आत्मा – चराचर का "मैं" – और – सर्व का सर्व। तो – इसीलिए गरूदेव वशिष्ठ जी कहते हैं कि –
"सबके उर अंतर बसहु"
भगवान तुम – सबके उर के – सबके हृदय के निवासी हो ! निवास करने वाले हो – और हर एक के हृदय के भाव और कुभाव को जानते भी हो !इसका अनुभव करके देख लो !देखो–
यो तो अमूमन – सबको इस बात का पता हैं – और सब कहते भी है– कि भगवान अंतरयामी हैं– और दूनियॉ नहीं देखती – भगवान तो देखता है – बाहर भीतर से! बिना पढे लिखे लोग भी यही कहते हैं औरतों मे वाद वक्त कभी बात चीत हो जाती है – तो आपस में महाभारत होता है– तो कहती हैं ! भगवान सब जगह से देखता है –भगवान सब जगह रहता है ! अब कैसे देखता है – उससे सब बात किस तरह से छुपी नहीं है– अभी अनुभव कर के देख लो देखो – अब पहले कुछ श्रुतियॉ कह दें

– तो फिर अनुभव करायें – ये बृहदारण्य की श्रुतियॉ हैं!

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अंतरो यं पृथिवी न वेद
यस्य पृथिवी शरीरं
यः पृथिवी मन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याभ्य मृतः।। मंत्र –3।।
बृहदाख्य उप० अध्याय 3 ब्राह्मण 7 पृ० 320

जो पृथ्वी के अन्दर व्यापक है। पृथ्वी है – यही तो व्यापक है पृथ्वी में – तो जो पृथ्वी के अन्दर व्यापक है – पृथ्वी को जो जानता है – पृथ्वी जिसको नहीं जानती – पृथ्वी जिसका शरीर है – पृथ्वी को जो नियंत्रण करता है – संयमन करता है – वो अन्तर्यामी आत्मा तू है।

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं
योऽपोन्तरो यम यत्येष त आत्माऽन्तर्याभ्यमृतः।।
मंत्र–4 बृहदाख्य उप० अध्याय 3 ब्राह्मण 7 पृ० 321

जो जल के अन्दर व्यापक है – जल को जो जानता है, जल जिसको नहीं जानता – जल ही जिसका शरीर है – जल को जो संयमन करता है – वो अन्तर्यामी आत्मा तू है।

योऽग्नौ तिष्ठन्नग्ने रन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्नि शरीरं
योऽग्निमन्तरो यमयत्येष ते आत्माऽन्तर्याभ्य मृतः।।
मं० 5 व्रहदराख्य उप० अध्याय 3 ब्राह्मण 7 – पृ० 322

जो अग्नि के अन्दर व्यापक है – अग्नि को जो जानता है – अग्नि जिसको नहीं जानता – अग्नि ही जिसका शरीर हैं – अग्नि को जो संयमन करता है – वह अन्तर्यामी आत्मा तू हैं।

यो वायौ तिष्ठन् वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं
यो वायु मन्तरो यम यत्येष त आत्माऽन्तर्याभ्य मृतः।।
मंत्र 7 बृहदाख्य० ब्राह्मण 7 अध्याय 3 पृ० 324

जो वायु के अन्दर व्यापक है – वायु को जो जानता है – वायु जिसको नहीं जानता – वायु ही जिसका शरीर है – वायु को जो संयमन करता है – वह अन्तर्यामी आत्मा तू हैं।

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः
शरीरं य आकाश मन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्य मृतः।। मं 12
बृहदाख्य० – अ –3 – ब्रा. – 7 – पृ० 328

जो आकाश के अन्दर व्यापक है – आकाश को जो जानता है – ये आकाश है – इसको कौन जानता है। लगाते जावो अपने स्वरूप को जो आकाश को जानता है – आकाश जिसको नहीं जानता – आकाश ही जिसका शरीर है – आकाश को जो अवकाश देता हैं – उसको संयमन करता हैं – वह अन्तर्यामी आत्मा तू हैं।

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद् यस्य मनः
शरीरं
यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्य मृतः।।
मंच 20 बृहदाख्य० अ० 3 ब्रा० 7 – पृ० 336

जो मन के अन्दर व्यापक है – मन को जो जानता है – मन जिसको नहीं जानता – मन ही जिसका शरीर है – मन को जो संयमन करता हैं। वो अन्तर्यामी आत्मा तू है।

"यो मनसि तिष्ठन्" । बिलकुल स्पष्ट है। अच्छा – पृथ्वी में, जल में, अग्नि में, वायु में, आकाश में, पंच महाभूतो में – और पंचमहाभूतो के कार्यो में – ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सारे चराचर में। ब्रह्मा – "है" – अब जो ये – "हैं" – है ना। और अभी – राम शब्द की व्याख्या किया ही हैं।

"तत्व मसि –महावाक्य" – के आधार पर – रा + म = राम
रा – माने वह – म – माने तू – यानी राम माने – "है" – हैं।
तो जो – ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सारे चराचर में। और उस दिन हमने कठ की श्रुति समझाई थी – अनुभव कराया गया था कि –

अस्ति इति ब्रुवतो ऽन्यत्र कथं तदुप लभ्यते।
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुप लभ्यते।।12।।

कठोपनिषद्– अध्याय 2 वल्ली 3 पृ० 137

वाणी जिसे नहीं व्यक्त कर सकती – मन जहाँ नहीं जा सकता– बुद्धि जिसे निश्चय नहीं कर सकती – दृष्टि जिसको नहीं देख सकती परन्तु – मन वाणी का जो विषय नहीं हैं – वही साक्षात् परमात्मा –

अस्ति इति – अस्ति इति – अस्ति इति – नित्यं ब्रुवतः।

अरे – हमेशा ही कहा करता है – "है" – "है" – "है" – तो फिर – अन्यत्र कथं उपलभ्यते।।12
और कहाँ उसको ढुँढने जावोगे। तो – इसीलिए तो राम कहते हैं न – जो सब में रमा हो – सब में अनुस्यूत हो – सबमें व्यापक हो सबमें मशहूर हो – परिपूर्ण हो। हां – अब समझ गये होगे – हल हो गया – ये जो अस्तित्व है न ये जो – "है"–है
अस्ति इति – अस्ति इति – अस्ति इति – "है" – "है" – "है"– ये जो – "है" – है – बस यही राम है – क्योंकि सब में रमा हुआ हैं। दृष्टि पसार कर देखो – इस – "है" – से इस "अस्तित्व" से – कोई भी देश काल, वस्तु – रिक्त नहीं है – मानें खाली नहीं हैं। ऐं – कोई भी खाली नहीं हैं। तो फिर– सबके उर अंतर बसहु – तो हो गया भैया! एक के उर में तो नहीं हैं न – अरे – जो "अस्तित्व" हैं जो – "है" – है – तो वह सबके उर में है कि – एक के उर में हैं। श्रोता – सबके उर में। सबके उर में – फूल है – कितनी ठोस चीज है ये। कितना सुन्दर अनुसंधान है ये – ओ हो। और फिर – "है" – ही में तो ये सब है – वाह –

सबके उर अंतर बसहु।
सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव।

देखो – उर का मतलब एक देशीय न समझना – उर कहते हैं हृदय को जदी हृदय को सीमित समझोगे – एक देशीय समझोगे – लीमिट समझोगे तो फिर हाथ पैर में कौन होगा। ऐं – तो यहाँ हृदय का मतलब – अंदर लेना – उर माने भीतर लेना। सबके उर अंतर बसहु – मानें – सबके भीतर बसहु – ये भाव हुआ। क्योंकि – यदि हृदय भर को उर कहोगे – तो फिर – (माइको स्कोप को दिखाकर समझा रहे हैं) ये में कौन होगा? इसमें कौन होगा – है ना – तो भैया! उर का मतलब भीतर में हैं – अरे यार! एक तृण को भी। एक तृण को भी अलग नहीं कर सकते अस्तित्व से। जी हां –
"सबके उर अंतर बसहु।" शिव –
जब ऐसा प्रसंग आए – जब ये दोहा आए – जब ये महा मंत्र आए। जब ये आए – तो फट् से लक्ष्य पर पहुँच जाया करो।
"सबके उर अंतर बसहु।"
याने – "मैं" – जो अस्तित्व हूँ – "सबके उर अंतर बसहु"।
जी हां – अब वही जो – "है" – है – उस दिन भी लखाया था। शरीर के अन्दर – अपने आप को – "मैं हूँ" – कहता है। जो अस्तित्व हैं – वही स्वयं अपने आप को – "मैं हूँ" – "मैं हूँ" – ऐसा कहता हैं। जी हां – हांजी – यह उस "मैं" की अथवा अस्तितव की व्याख्या की जा रही है – अथवा अनुभूति कराई जा रही है – जो यूनी व्हर्सल है – जो परिपूर्ण हैं – व्यापक है– जो ठसाठस भरा हुआ है – परिपूर्ण हैं – जो सबके उर हैं – एक के नहीं। जिस मैं को साढ़े तीन हाथ वाला मैं मान रहे हो – भैया! यह साढे तीन हाथ वाला मैं नहीं है – हां इस दृष्टि को निकाल दो – यह जो महदूद नजर है – इसको फोड़ दो– निकाल दो – त्याग कर दो। इस दृष्टि को निकालदो –

त्याग कर दो – फोड़ दो – ये जो लाँ महदूद हैं।
"सबके उर अंतर बसहु।"

जी हां – और फिर देखो – इसको दूसरे ढंग से समझ लो – भगवान राम को। भगवान राम को – रामायण शास्त्र वेद तथा हम तुम – और हम स्वयं – मर्यादा पुरूषोत्तम भी तो कहते हो ना। अब मर्यादा पुरूषोत्तम की व्याख्या सुन लो – पढ़े लिखे हो – स्कूल गये हो, कॉलेज गये हो – यूनीवर्सिटी गये हो। हमने पढ़ा था यह ग्रामर प्रायमरी चौथी में – उस जमाने में ये ग्रामर प्रायमरी चौथी में पढ़ाया जाता था। मुमकिन है कि आज मिडिल स्कूल में पढ़ाते हों –तीन प्रकार के पुरूष होतेहैं। "सबके उर अन्तर बसहु" की व्याख्या में – ये सब व्याख्यायें आ राही हैं – तो तीन प्रकार के पुरूष पढ़ाये जाते हैं व्याकरण में– अन्यपुरूष – मध्यम पुरूष और उत्तम पुरूष समझना।
वह–ये अन्य पुरूष है–तू–मध्यम पुरूष है–मैं उत्तम पुरूष हैं।
वह – तू – मैं
संस्कृत में – स – त्वं – अहम्
अग्रेजी में – ही – यू – और आई
तो वह तो हुआ अन्य पुरूष – ये बचपन में पढ़ाया गुरूजी ने। और तू जो हैं – ये मध्यम पुरूष हैं। और मैं जो है – उसको कौन सा पुरूष पढ़ाया? श्रोता – उत्तम पुरूष। हां – ये तुम्हीं कहोगे तब बनेगा। मैं – जो है – उत्तम पुरूष – गुरूजी ने पढ़ाया शुरू
में। "मैं" को उत्तम पुरूष – परन्तु – चेला ने क्या समझा? श्रोता – अधम पुरूष। गुरूजी ने तो पढ़ाया – "मैं" – को उत्तम पुरूष
और विघार्थी – शिक्षर्थी – या चेलाजी ने क्या मानें लगाया – अधम – मैं पापी हूँ मैं चण्डाल हूँ – मैं अधम हूँ – हत तेरा भला हो। सब पढ़ा पढाया मटिया मेट हो गया – यह – नेचरल

फिलासफी हैं। स्वाभविक वेदान्त हैं। अन्दर से जो निकलता हैं – वह एकदम नेचुरल होता हैं – यह स्वाभाविक वेदान्त हैं। गुरूजी ने तो पढ़ाया हमको कि बेटा! "मैं" – उत्तम पुरूष हैं। और जिस गुरूजी ने – "मैं" – को उत्तम पुरूष पढ़ाया – उसके गुरू जी ने भी उसको यही पढ़ाया होगा। – तो भैंया! ये परम्परा से – ये वेदान्त चला आ रहा हैं – अब हमारी ये बेवकूफी है कि – ये हमारी कम ख्याली है – हमारी विचार शून्यता है – कि हम
अपने आप को – अपने – "मैं" – को अधम पुरूष मानें। पापी मानें। तो – "मैं" – हुआ उत्तम पुरूष – बिलकुल ठीक। गीता
के पन्द्रहवें अध्याय के कुछ श्लोक सुनलो! अब प्रसंग तो यहाँ रामायण की चल रही हैं – परन्तु हमें अनुभूति तो करानी ही है – इसलिए प्रमाण इधर उधर से लेकर तुमको समझाना ही हैं।

द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।गी० 15 – 16

उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोक त्रय माविश्य बिभर्त्य व्यय ईश्वरः।।गी० 15 – 17

यस्मात्क्षर मतीतोऽह मक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः ।।गी० 15– 18

अच्छा –

द्वाविमौ पुरूषौ लोके – लोके कोर्थः – शरीरे –
इमौ पुरूषौ द्वौ – कौ – क्षर – अक्षरौ –

द्वाविमौ – इस शरीर में दो प्रकार के पुरूष हैं। एक क्षर – और एक अक्षर – क्षर सर्वाणि भूतानि। सारा भूत भौतिक

प्रपंच क्षर हैं – क्षर कहते हैं – नाशवान को – और अक्षर कहते हैं – चेतन को – अविनाशी को। यहाँ अक्षर शब्द से – जीव का अर्थ लेना – अक्षर से जीव लेना – और क्षर से – प्रकृति लेना – जड़ – ये सब नाशवान हैं – ये क्षर हैं। और इसके अन्दर जो चेतना है – वो जीव है – परन्तु –

उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः –

उत्तमः पुरूषः सस्त्वन्यः यः सः

जो उत्तम पुरूष हैं – वह इन दोनों से अलग हैं। और भगवान कहते हैं – उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः –

उत्तम पुरूष जो हैं – वह क्षर अक्षर – इन दोनो से अलग हैं।

और इसलिए – पर मात्मेत्यु दाहृतः –

क्षर अक्षर दोनों से परे होने के नाते – परमात्मा इति उदारता– उसी को परमात्मा कहते हैं। अच्छा –

यो लोक त्रय माविश्य – तीनों लोकों में प्रवेश करके – मानें– स्थूल शरीर में – सूक्ष्म शरीर में – कारण शरीर में – तीनों शरीर में प्रविष्ट होकर – विभर्त्य व्यय ईश्वरः।

ऐसा जो ईश्वर है – अव्यक, अविनाशी, परिपूर्ण – वह – विभर्त्य व्यय ईश्वरः। धारण करता हैं।

यस्मात्क्षर मतीतोऽह मक्षरा दपि चोत्तमः।

वह जो उत्तम पुरूष हैं – वह क्षर से तो अतीत हैं – माने परे हैं – और अक्षर से उत्तम हैं – तो क्षर से अतीत और अक्षर से उत्तम।

अतोऽस्मि लोके वेदे च – अतः अस्मात् कारणात् –

लोके– संसारे यस्मात्क्षर मतीतोऽ ह मक्षरादपि चोत्तमः।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः।।गी० 15 – 18

इसलिए – लोके संसारे – वेदों में और शास्त्रों में इसको पुरूषोत्तम कहते हैं। मानें – पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हैं।

अब समझ गए होगे कि – चराचर का अस्तित्व – मैं नाम से

जो आत्मा अभिव्यक्त हैं – जो प्रसिद्ध है – प्रसफुटित हो रहा है – हर एक में – तो यह पुरूषोत्तम हैं। परन्तु धन्य हैं – ऐसा जो पुरूषोत्तम राम – इसकी कैसी विचित्र मर्यादा हैं कि – अपनी मर्यादा से – कभी यह विचलित नहीं होता। कैसी मर्यादा हैं– कि कभी सत से विचलित नहीं होता – एक रस – कभी चित से विचलित नहीं होता – ज्ञान स्वरूप – कभी – आनंद से विचलित नहीं होता – दुःख नहीं बनता। फिर कैसी मर्यादा जो जाग्रत अवस्था को जानता हैं। वही मर्यादा पुरूषोत्तम – स्वप्न को जानता हैं – और जो जाग्रत और स्वप्न को जानता हैं – वही गाढ़ी निद्रा और सुषुप्ति को जानता हैं। जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति को जानता है वही भूत भविष्य वर्तमान को जानता हैं। वो तीनों काल को जानता है– वही समाधि मूर्छा को जानता हैं। अरे – यह जो जानने की मर्यादा हैं – इसका कभी उलंघन नहीं करता। इसलिए – यही मर्यादा पुरूषोत्तम राम है। यही मर्यादापुरूषोत्तम राम हैं – यही मर्यादा पुरूषोत्तम राम हैं। वाह – तब फिर

ज्ञान अखंड एक सीता वर।।

और प्रमाण लो – ये तो सब महा मंत्र हैं – मानस कार ने यहाँ पर सब श्रुतियाँ उठाकर रख दिया है – रामायण में –

"सत्यं ज्ञान मनन्तंब्रह्म – सत्यं शिवं सुन्दरम्।"

जो ज्ञान स्वरूप हैं।

"ज्ञान अखंड एक सीता वर।"

जो अखंड ज्ञान स्वरूप है – अरे – भगवान आत्मा मैं का ज्ञान – भगवान आत्मा मर्यादा पुरूषोत्तम मैं का ज्ञान – कभी खंडित भी होता हैं। नहीं होता। कि जाग्रत अवस्था को जान लिया – तो थोड़ा बहुत रहा तो – स्वप्न में चला गया – थोड़ा बहुत बचा रहा तो गाढ़ी नींद में सुषुप्ति में चला गया – अब ज्ञान शून्य हो गया ऐसा तो है नहीं – अहा – भगवान आत्मा "मैं" मर्यादा पुरूषोत्तम का ज्ञान कभी खंडित नहीं होता –

अखंड ज्ञान है – "ज्ञान अखंड" फिर अनेक नहीं – "एक सीता वर" – ज्ञान अखंड एक सीता वर" अखंड ज्ञान स्वरूप भगवान आत्मा राम परिपूर्ण है।

अच्छा फिर देखो – कैसा ज्ञान।

जाग्रतस्वप्न, सुषुप्ति, समाधि, मूर्छा – कभी भी ज्ञान खंडित नहिं होता। ये नहीं कि – जाग्रत अवस्था को जान लेने पर – यार! जाग्रत अवस्था को मैंने जाना है भैया! इसलिए – ज्ञान थोड़ा कम हो गया – ऐसा तो है नहीं – अरे – ज्यों का त्यों अरे! ज्ञान ही जिसका स्वरूप है – तो कम क्या होगा। जानने वाले से अगर – "भगवान आत्मा पुरूषोत्तम मैं" – से जदि ज्ञान जुदा हो – भिन्न हो – तब उसमें कुछ कमी ज्यादा हो भाई – अरे – जब स्वयं ही है भाई! ज्ञान ही जिसका स्वरूप है। शिव – फिर श्रुति क्या कहती है।

प्रज्ञानं ब्रम्हा – प्रज्ञानं ब्रम्हा – प्रज्ञानं ब्रम्हा।
नान्तः प्रज्ञं नवहिष्प्रज्ञं नो भयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान धनं
न प्रज्ञं ना प्रज्ञं। अदृष्ट भव्यवहार्य मग्राह्यमलक्षणम्
मचिन्त्य मव्यपदेश्य मेकात्म प्रत्यय सारं प्रपञ्चोपशमं
शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः। 7।।

माण्डूक्योपनिषद् – मंत्र – 7 – पृ० 240

श्रुतियाँ प्रतिपादन कर रही हैं – डंका बजा रही हैं। प्रज्ञानं ब्रह्म– "भगवान आत्मा मैं" – चराचर का अस्तित्व राम नाम से प्रख्यात प्रज्ञान घन हैं। प्रज्ञान कहते हैं –

"प्रकर्षेण ज्ञानं प्रज्ञानं" – मतलब ये है – अरे भाई! तत्काल ही जो जानें – अरे भाई! जैसे ये (डण्डा दिखाकर समझा रहे हैं) जिसको जानने के लिए – अरे भाई! तत्काल ही जो जानें– देखना इधर – (डण्डा दिखाकर) कितनी जल्दी जानें इसको – ये डण्डा हैं – कितना समय लगा। यानी – किसी भी विषय को – किसी भी देश काल वस्तु को – जाननें के लिए –

भगवान आत्मा को काल की सीमा नहीं हैं। यह – इसीलिए – ज्ञान अखंड – प्रज्ञानं घन – शिव – ज्ञान अखंड – ठोस ज्ञान हैं। भगवान आत्मा – राम नाम से विख्यात भगवान आत्मा में को – किसी भी देश काल वस्तु को जानने के लिए – काल की सीमा नहीं है – इसलिए – "ज्ञान अखंड एक सीता वर।"

परम प्रकाशानुभूति

भाग – 2

ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाय।
जाते होय चरन रति सोक मोह भ्रम जाय।।

दो० 14 पृ – 368

इसके उत्तर में भगवान राम कहते हैं –

माया ईस न आपु कहुँ जानि कहिअ सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सींव।।दो० 15

मतलब ये है कि – आप कहँ – माया ईश न जान – सो जीव कहिये। कुछ लोग इस दोहे का अर्थ ऐसा भी करते हैं – कि – अपने आप के – मानें – आपको – माया को और ईश्वर को – तीनों को जो नहीं जानता – उसको जीव कहते हैं। मगर – ये बात नहीं हैं। यहाँ तो जीव ईश्वर का भेद बताना हैं। इसका वास्तविक अर्थ ये है कि –
आप कहँ – माया ईश न जान – सो जीव कहिअ। आप कहँ – माने अपने आपको – जो माया पति नहीं जानता – माया का जो अधिष्ठान हैं – माया का जो आधार हैं – उसको जो नहीं जानता – यानें भगवान से – जो अपने आपको भिन्न मानता हैं – तो – उसी को जीव कहते हैं। तो –

माया ईस न आप कहँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर माया प्रेरक सींव।

दो० 15 पृ० 368 राम – अरण्य

देखो – अब अपने आप को माया पति जानने का लक्षण क्या है? और माया पति – किस तरह जानना चाहिए – इसकी भी अनुभूति करायेंगे। इसकी भी व्याख्या होगी। मगर – सबसे पहले ये बताना हैं कि – अपने आपको – भगवान से भिन्न मानने पर क्या होता हैं – इसका क्या फल हैं – और अपने आप को भगवान जानने में – जान लेने पर क्या होता हैं – और भगवान से भिन्न मानने पर क्या होता हैं। ये दोनों बातें – श्वेताश्वरोपनिषद् की श्रुति इसका समाधान करती हैं।

सर्वा जी वे सर्व संस्थे बृहन्ते
अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्म चके।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्ट स्ततस्तेनामृतत्व मेति। 6।।

श्वेताश्वरोप० अध्याय –1–6 पृ० 360

भाव ये है –

आत्मानं प्रेरितारं परमात्मानं – पृथक मत्वा –
सर्वा जीवे सर्व संस्थे बृहन्ते – ये संसार का विशेषण है।
ब्रह्म चक्रे संसारे हंसो जीवः भ्राम्यते।

अपने आप को परमात्मा से भिन्न मानकर – अपने आप को – परमात्मा अलग हैं – मैं अलग हूँ – यह और है – मैं और हूँ – वो भिन्न है – मैं भिन्न हूँ – वो सर्वज्ञ है – मैं अल्पज्ञ हूँ –वो सर्व शक्ति मान हैं – मैं अल्प शक्ति मान हूँ– वो एक है, मैं अनेक हूँ – वो अचल है, मैं चल हूँ – इत्यादि। तो परमात्मा से अपने आप को अलग मानकर – हंसो जीवः हंस जो जीव है – ब्रह्म चक जो संसार है – इसमें अनादि काल से भ्रम रहा हैं। मतलब ये है कि – जीव के आवागमन का मुख्य कारण यही है। परमात्मा से अपने आपको – अलग मानने से ही – यह जीव संसार चक्र में अनादि काल से भ्रम रहा हैं। अच्छा – अब जीव का आवागमन कब मिटता है – इसको भी श्रुति

इसका भी समाधान करती हैं – इसी मंत्र में – इतनी अच्छी श्रुति हैं ये – क्या विलक्षण भाव है इसका।

सर्वा जीवे सर्व संस्थे बृहन्ते
तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्म चके।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा

श्वेताश्वरोप० अ – 1 –6 – पृ० 360

मानें – जीव के आवागमन का यही कारण हैं कि – परमात्मा से यह अपने आप को भिन्न मानता है। अच्छा – अब इसके भ्रमने का का कारण तो यही हैं – अब पता लग गया। मगर– इसका आवागमन कब मिटता हैं – जीव का – तो श्रुति कहती हैं –

जुष्ट स्ततस्तेना मृतत्व मेति।।6।। श्वेता० पृ० 360

जुष्टः – जब भगवान से जुड़ जाता हैं। तब ये याने – जब भगवान से जुड़ जाता हैं – तब –

"अमृत तत्वं परमात्मानं येति प्राप्नोति।"

फिर इसके आवागमन का जो चक्र है – वह खतम हो जाता है मिट जाता हैं। जब भगवान से जुड़ जाता है तो अमृत तत्व पद को प्राप्त होता हैं। तो भैया! जीव का भगवान से जुड़ना क्या है – अगर वस्तुतः – जीव और ईश्वर भिन्न हैं। सत्य में यदि– ये जीव और ईश्वर भिन्न भिन्न हैं – ये दोनों अलग अलग हैं– तो आज ये किसी तरह से जुड़ गया – तो एक दिन इसका जोड़ टूट जायेगा। क्या इधर से भगवान आये और उधर से जीव आया और दोनों जुड़ गये – तो फिर ये जुड़ना तो न हुआ। अरे भाई! ये है ही – ये वही है – साक्षात् – याने अपने आपको अपने मैं को भगवान जानना ही – भगवान निश्चय करना ही – यही भगवान से जीव का जुड़ना हैं। जी हां – तो–

सर्वा जीवें सर्व संस्थे बृहन्ते

तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्म चक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्ट स्ततस्तेनामृतत्व मेति।।6।।

श्वेताश्वरोप निषद्–अ० 1 – 6–पृ० 360

जीव का आवागमन और जीव के आवागमन का कारण – और जीव के आवागमन से छूटने के उपाय – ये दोनों ही – एक ही मंत्र में बताए गए हैं। देखो – अब यहाँ पर हम वेदान्त की थोड़ी सी प्रकिया बतायेंगे। क्योकि जो पुराने सतसंगी हैं – जो प्रति वर्ष सुनते रहते हैं – क्योंकि – इस अध्यात्म के प्रचार को काफी दिन हो गए – यों तों – देश विदेशों में – सभी जगह यह मिशन घूमता हैं – सब जगह – प्रचार करता हैं – परन्तु खास कर के आपके मध्यप्रदेश में छत्तीसगढ़ में तो – प्रचार करते 45 साल हो गए। ऐं – विषय को जो समझे हैं – वे तो इशारे से समझ जाते हैं। उनके लिए प्रकिया समझाने की जरूरत नहीं पड़ती। परन्तु – इस स्थान का पहला मौका है – इससे हम प्रक्रिया समझायेंगे – जिससे हर एक इसको समझ सकें – कि – परमात्मा क्या हैं? इस पर हम रोशनी डाल रहे हैं – अब जो जहाँ बैठे हैं – नर नारी दोनों समाज में – ध्यान से सुनें। सोना तौल में रत्ती भर हो या सेर भर हो – मगर पीला, वजन मुलायम – ये तीन लक्षण जिस धातु में पाये जाय – उसी को सोना कहते हैं। तेरे स्वरूप में – तुझ सोने में – पीला, वजन, मुलायम पन हैं। सोने में आभूषण रात दिन बनते बिगड़ते रहते हैं – मगर तू सोना – न कभी बनता हैं – न बिगड़ता हैं। कितना गलाया जाय – कितना ठोका पीटा जाय – मगर सोना अपने स्वरूप से कभी भिन्न नहीं होता। पीला पन से अलग नहीं – मुलायम पने से अलग नहीं– वजन पने से अलग नहीं। तो भैया! तू सोना – तू ज्यों का त्यों है – तेरे स्वरूप में आभूषण रात दिन बनते बिगड़ते रहते हैं – तू आभूषण नहीं है। मगर तू सोना – न कभी बनता है

न कभी बिगड़ता है। अपने स्वरूप के अज्ञान से तू अपने आप को गहना माना है, आभूषण माना है – भैया! तू आभूषण नहीं है। जी हां – इसको प्रकिया कहते हैं। आभूषण से अलग कर के बताया गया सोना को – इसी तरह से अनादि काल से जीवों को यह अज्ञान हो रहा है कि हम तो साढे तीन हाथ के शरीर हैं। ये जो मृत पिंड याने – ये जो पाञ्च भौतिक पिंड है – मलमूत्र का भांड – हड्डी, चमड़ा, मांस का पुतला – रज वीर्य से बना हुआ – इसको ही अज्ञान से लोग मान बैठे हैं कि – यही मैं हूँ। ये अज्ञानै तो है – ये भ्रम है – भूल हैं। अच्छा अब – "मैं" – एक अलग चीज है – इसके अन्दर। मगर – "मैं" – को आत्मा न जानकर – मैं का अर्थ लोगों ने लगा लिया है – साढ़े तीन हाथ का शरीर। बड़ा भारी भ्रम है ये। तो फिर शुरू में – संत महात्मा आचार्य, गुरूजन – प्रकिया समझाते हैं। इसको प्रकिया कहते हैं। प्रकिया द्वारा शरीर से भिन्न करके आत्मा को जनाया जाता हैं। इसी तरह – आज हम बता रहे हैं – अब सुनो समझो! और बड़ी सरलता से समझायेंगे हम देखो – शरीर नहीं मैं आत्मा हूँ – यह प्रकिया हैं। पहले पहल – गुरू महात्माजन बताते हैं कि – अरे – शरीर कौन तेरे स्वरूप से भिन्न हैं – इसलिए शरीर भी तू ही हैं। यह शरीर कैसो भास रहा है – मुझ आत्मा में कि – जैसे लकड़ी में डण्डा भासै – सोना में आभूषण – मिट्टी में घटादिक पदार्थ – और धागे में वस्त्र – इसी प्रकार – मुझ सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा में शरीर। इसका कुछ अस्तित्व नहीं है – इस तरह भास रहा हैं। इसलिए ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त– सारा चराचर – "मैं" – हूँ। मुझ आत्मा से भिन्न कुछ है ही नहीं।

"वासुदेवः सर्व मिति"

देखो – श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, संत महात्मागण, सभी का कहना है कि – किसी भी प्रकार किसी भी तरह से – यह दृश्य ओझल

हो जाय। अध्यात्म रामायण में भगवान राम – लक्षमण से कहते हैं कि –

पूर्व समाधे सरिवलं विचिन्तये –
दो ङ्कार मात्रं सचरा चरं जगत।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको
विभाव्यतंऽज्ञान वशान्न बोधतः।।48।।

अध्यात्म रामायणराम गीता० पृ० 33

समाधे पूर्व सचराचरं जगत ॐकार मात्रं विचिन्तये।

समाधे पर्व सचराचरं जगत – जो सत्य सा प्रतीत हो रहा हैं। अरे – वह – "मैं आत्मा" – ही तो हूँ – कण कण भगवान हैं। कण कण आत्मा हैं। इसलिए – निर्विकल्प समाधि के पूर्व – सारे प्रपंच जगत को – अपना स्वरूप आत्मा – प्रणवाकार जानकर – कि सर्व – "मैं हूँ" – ऐसा चिंतन करे। क्यों चिंतन करे? क्योंकि – अनादि काल से – यह वैकल्पिक जगत सत्य सा भास रहा हैं। अरे – डण्डा में जो भास पना है – वह डण्डे का नहीं लकड़ी का हैं। आभूषण में जो स्वर्ण हैं – वह यदि वजन पना – पीला पना – लचीला पना को भूल जावे – तो आभूषण रहेगा कहां। सारे प्रपंच में जो सत्य भास रहा है – वह – "मैं आत्मा" – ही तो हैं।

पूर्व समाधे – ऐसा चिंतन करै। सोना – जो वाचक हैं – आभूषण वाच्य है – मिट्टी वाचक है – घटादिक पदार्थ वाच्य हैं। ऐसे ही – "मैं आत्मा" – वाचक हूँ – संसार प्रपंच वाच्य हैं।

पूर्व समाधे रखिलं विचिन्तये
दोङ्कार मात्रं सचराचरं जगत।
तदेव वाच्यं प्रणयो हि वाचको
विभाव्यतेऽज्ञान वशान्न बोधतः।।48
अध्यात्म रामा० राम गीता०

अरे – अज्ञान वशात इदं प्रपंचम् विभाव्यतेः न तु बोधतः।
न तु ज्ञान तः न तु स्वरूप तः।
क्योंकि – अनादि काल से यह वैकल्पिक जगत – सत्य सा भास रहा हैं। परन्तु – ज्ञान दृष्टि से – शरीर है ही नहीं – भगवान ही भगवान हैं। अरे – डण्डे में जो भास पना है – वह डण्डे का नहीं – लकड़ी का हैं। अरे भाई! स्वर्ण के अज्ञान से – आभूषण भासता है – स्वर्ण दृष्टि से तो आभूषण सोना ही है ना। और क्रय विक्रय भी दृष्टि से देखो – देखो शर्राफ की दूकान में – जब तुम जेवर खरीदने जाते हो – तो क्या पूछते हो – कहो लाला जी – कहो सेठजी ! आज गले के चैन का क्या भाव है – पूछते हो कि – सोने का क्या भाव है पूछते हो? पूछो – देखो – यह व्यवहारिक वेदान्त है – क्रय विक्रय में भी – सोने को ही पूछते हो – और गहना बेचने जावोगे तो– गहना बेचोगे कि – सोना – ये देखो सोना। फर्ज कीजिए कि – होम मिनिस्टर का – फौरन आर्डर हुआ कि – जावो इस किसम का कोई जेवर या हार बनवाकर ले आवो। अब तुम भैया – बनवाकर ले आये – मगर श्रीमती जी को पसंद नहीं आया – नाक सिकोड़ने लगी – हां बना तो है – मगर जावो वापस करो। अब हालांकि – तुम बाजार घूमें हो– तो तुम्हारा कंठ सूख रहा हैं। परन्तु – उस वक्त तुम्हारे ऊपर दया नहीं है – अब वही उल्टे पैर तुम गये शर्राफ की दूकान में वापस करने। तो भैया! शर्राफ तुमको सोने का भाव देगा – या बनवाई भी वापस करेगा? श्रोता – सोने का देगा। ये देखो – बनवाई गई जहन्नम में – क्योंकि तुम्हारी दृष्टि में जेवर हैं। परन्तु – शर्राफ की दृष्टि में तो – आभूषण तीन काल में है ही नहीं। इसलिए – वह बनवाई नहीं देगा – सोना का ही भाव देगा। व्यवहारिक जगत में भी अधिष्ठान का ही क्रय विक्रय होता हैं। कल्पित का कोई अस्तित्व ही नंही हैं। इसलिए – मैं आत्मा सर्व का अधिष्ठान हूँ – और मुझ आत्मा से किसी की पृथक सत्ता नहीं है

– इसलिए – सर्व – "मैं" – ही हूँ। शरीर भी – "मैं" – हूँ – कण कण – "मैं" – हूँ – जर्रा जर्रा – "मैं"– हूँ।मुझ आत्मा से भिन्न किसी की पृथक सत्ता नहीं हैं। इसका नाम सिद्धान्त हैं। कहीं अधिष्ठान में भी भूल होता है– कल्पना का कोई अस्तित्व नहीं – "मैं आत्मा" – सर्व का सर्व हूँ। मुझ आत्मा से भिन्न किसी की पृथक सत्ता है ही नहीं – "मैं" – सर्व को सिद्ध करता हूँ – इसका नाम सिद्धान्त हैं।

एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म – नेह नानास्ति किंचन।
अहमे वेद सर्वम्। आत्मै वेद सर्वम्।
नारायण ये वेदं सर्वम्।

यह वेदान्त का सिद्धान्त हैं। अब आ जावो वेदान्त बतावें – वेदान्त की प्रकिया और सिद्धान्त किसे कहते हैं। प्रकिया को अन्वय कहते हैं – और सिद्धान्त को व्यतिरेक।

कार्येषु कारण त्वे नानु वृत्ति रन्वयः।
कारणा वस्था यां च तेभ्यो व्यति रेकः।।

अब आ जावो – अब बोध में आ जावो –
"अह मस्मि" – "मैं हूँ" – देखो –
जिस तरह स्वर्ण देश में – आभूषण नहीं – लकड़ी देश में डण्डा नहीं – वैसे ही –मुझ आत्म देश में – शरीरादिक प्रपंच नही। अरे भाई! शरीर विकल्प है – अथवा वस्तु है? उत्तर– विकल्प है – शरीर वस्तु नहीं है – शरीर विकल्प हैं। और विकल्प का जो आधार है – वह – "मैं आत्मा" – ही तो हूँ। ऐं– देखो – जैसे – सूर्य देश में अंधकार का लेश नहीं – इसी तरह – मुझ आत्म देश से पृथक सत्ता किसी की – है ही नहीं। न सर्व है – न असर्व है कुछ नहीं। सर्व भी गया – शरीर भी गया प्रपंच भी गया – केवल आत्म सत्ता हैं। विकल्प का अभाव कर दो – शुद्ध चेतन धन, अपना आत्मा स्वरूप – आत्म सत्ता स्थित हैं। विकल्प को हटा दो – विकल्पा भाव कर दो– विकल्प तीन काल में नहीं। "मैं आत्मा" – शुद्ध तत्व चैतन्य

धन सत्ता – अपनी महिमा में स्थित हैं। "मैं आत्मा" – सर्व का ज्ञाता हूँ – सर्व का आधार हूँ – कर्म में लिपायमान नहीं होता– मैं आत्मा साक्षी हूँ। परन्तु – इस साढ़े तीन हाथ के शरीर से अलग हूँ – और अक्रिय हूँ। साक्षी अक्रिय होता है – यदि उसमें भी क्रिया हो – तो वह साक्षी नहीं रहेगा – वरन् मुलजिम हो जायेगा। मैं आत्मा मन के आने जाने को जानता हूँ – निर्विकार और तटस्थ हूँ। कर्मो का करना तब तक दूर नहीं होता – जब तक अभिमान हैं। देहाभिमान जब तक नहीं जाता – तब तक कर्म भाव बना रहता हैं। तो अज्ञान के नाश में कर्म जाल का नाश हैं। जब तक चमार पना दूर न होगा – तब तक बेगार करना दूर नहीं होता – नहीं छूटता। हंस कर ढोवो या रोकर – ढोना तो पड़ेगा ही। एक दृष्टान्त हैं। किसी गांव में एक जमीदार साहब थे – तो वे सकुटुम्ब, दीवान, मुक्तियार, हाली, मोहाली, नौकर चाकर – के साथ श्री जगन्नाथ दर्शन को गए। तो गांव का चमार टेटकू भी साथ हो लिया – वह भी जगन्नाथ दर्शन को गया। जगन्नाथ जी पहुँच कर जब श्री भगवान जगन्नाथ जी का दर्शन हुआ – तो वे बड़े प्रसन्न हुए। तो पण्डा जी जजमानों से कहते हैं – कि दाऊ साहब! आप बहुत दिनों में तीर्थ को आए हो – एक न एक चीज भगवान के दरबार में आप छोड़ कर जावो – अरे छोड़ दो – जो चीज तुमको अच्छी न लगै खाने में। ऐसी चीज नहीं छोड़ाते कि – शराब छोड़ो – जुवा छोड़ो – दुराचार छोड़ो – दगाबाजी छोड़ो – विश्वास घात छोड़ो। ऐं – आज से पराई बहू बेटी को बूरी निगाह से नहीं देखना – चीजों में मिलावट नही करना – रिश्वत खोरी नहीं करना – ये नहीं छोड़ते न कोई छोडा़ता हैं। क्या छोड़ते हैं – भगवान! आज से हम करेला नहीं खायेंगे – आज से हम मूली नहीं खाएंगे – हत तेरा नाश हो। अरे – मूली, करेला, गाजर, छोड़ने से कोई तरेगा संसार से। अरे यार वो तो हरी सब्जी है – डर के खावो– उसमें विटामिन

होती है – ड्रग के खावो – तुमको सुबह साफ सौच होगी। कब्जियत निकल जायेगी – मगर ये चीज नहीं छोड़ते। मूली नहीं खायेंगे – गाजर नहीं खायेंगे, भाटा नहीं खायेंगे। खैर सब छोड़ रहे थे – तो टेटकू जो खड़ा था – क्योंकि – कांग्रेस का जमाना था नहीं – अंग्रेजों का जमाना था बेगार का वक्त था। बेगार करते–करते उसके सिर के बाल साफ हो गए थे। बोझा डोहारते–डोहारते बोझा ढोते–ढोते तब फिर टेटकू ने कहा– आज से महराज हम बेगार नहीं करेंगे। अब छोड़ के आ गया। कुछ दिनों बाद जमींदार को कहीं जाना था– तो जमींदार ने कहा कि कोई मजदूर ले आवों बुला के – अरे टेटकुआ! राम राम मालिक हां राम राम मालिक चलो जमींदार साहब बुला रहे हैं तुझे – बोझा ले जाना है – सामान भेजना है – पहुँचाना है। महराज! मैं तो बेगार छोड़ के आ गए हौं – महराज! भगवान के दरबार में। अरे–कैसी बातें करता है रे! तो जमींदार से कहा कि – महराज! वो तो बेगार छोड़ के आ गया है – भगवान के दरबार में। तो जमींदार ने कहा कि – ले आवो उसको कान पकड़ के।

क्यों रे – क्या रे – क्या कहता है – तो मालिक! मैं बेगार छोड़ के आ गये हौं सरकार! आप मूली छोड़े हैं – आपकी श्रीमति गाजर छोड़ के आए हैं – तो सरकार! मैं भी भगवान के दरबार में बेगार छोड़ के आए हौं– मैं बेगार नहीं करता! जमींदार ने लगाया दो तमाचा – अरे – कहने लगे – बेवकूफ – बेगार छोड़ के तो आ गया – मगर चमार पना तो नहीं छोड़ा। जब तक तुझ में चमार पना है – तब तक तुझे बेगार करना ही पड़ेगा। चाहे भैया! तू हंस के करै – चाहे रोय के इस दृष्टांत का मतलब ये है भैया! जिसको चर्म दृष्टि है वहीं चमार है।

चतुराई चूल्हे परै घूरे परै अचार। अचार नहीं आचार –
तुलसी आतम ज्ञान बिनु चारों वरण चमार।।

यार! जिसकी चर्म दृष्टि है – 3½ हाथ कि ही इस हड्डी चमड़ा मांस के पुतले को ही जिसने अपना आत्मा माना है – जिसने अपना रूवरूप जाना है। और क्या कहीं चमार की सींग पूंछ होती है – लेबल लगी है उसकी? अरे जिसकी चर्म दृष्टि हो वहीं चमार है। जी हां –

गरज ये है कि – जब तक चर्म दृष्टि हे – जब तक के देहाभिमान दूर नहीं हुआ – देह दृष्टि जब तक नहीं गई – तब तक पुण्य और पाप कर्म की जो गठरी है – इसको भोगना पड़ेगा भैया! शुभ कर्म का फल स्वर्ग जावोगे भोगने और पाप कर्म का फल नरक जाकर के भोगोगे। तो कहने का मतलब ये है कि – आवागमन का जो चक्र है – कभी मिटने वाला नहीं है। शुभाशुभ कर्मो का जो फल है – उसका बोझा ढोना ही पड़ेगा – बेगार डोहारना ही पड़ेगा। बेगार करना ही पड़ेगा। जब तक तुम – अपने आप को देह मानोगे। देह दृष्टि जब तक तुम्हारी दूर न हो जायेगी तब तक करना ही पड़ेगा। इसलिए– तुम अपने आप को भगवान आत्मा जानों – आत्म तत्व जानों।

शिव–

तो भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमानकाल – तीनों काल में – और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त – तीनों अवस्थाओं में एक सा रहने के नाते – मैं आत्मा सत्य हूँ।

अच्छा – मैं चेतन हूँ कि जड़ हूँ – नहीं मैं चेतन हूँ – जड़ का क्या काम। चेतन किसको कहते हैं? चेतन उसको कहते हैं– जो अपने आप को भी जाने और दूसरों को भी जाने – उसको चेतन कहते हैं। तो मैं अपने आप को भी जानता हूँ – और दूसरों को भी जानता हूँ – इसलिए – "मैं आत्मा" चित हूँ – चेतन हूँ।

दूसरों को कैसे – मैं अपने शरीर को जानता हूँ – मैं मानें – सब अपने आप को समझना – जितने बैठे हो। शरीर को मैं जानता हूँ। मन को, बुद्धि को, चित्त को, अहंकार को,

मन के भाव को कुभाव को बूरे को भले को प्राण को, शरीर को, इन्द्रियों को – मैं क्या नहीं जानता – मैं सबको जानता हूँ। और अपने को कैसे जानता हूँ। अरे – मैं हूँ इसका ज्ञान है कि नहीं? श्रोता – हां। कि नहीं है – यही तो जानना है – और क्या जानना हैं। क्या मैं – करिया पंडरा हूँ – यह जाना जाय। तो – "मैं" – अपने आप को भी जानता हूँ – इसलिए – मैं चेतन हूँ – चित हूँ। और मैं आनंद रूप हूँ कि – दुःख रूप हूँ – नहीं मैं आनंद रूप हूँ। परम प्रिय होने के नाते – "मैं आत्मा" – आनंद रूप हूँ। अच्छा – अब दूसरी प्रक्रिया बिलकुल सूक्ष्म रूप में हैं। देखो – "मैं हूँ" – मैं हूँ – इसमें कभी किसी को शंका होती हैं। अपने – मैं हूँ में। ऐसा तो नहीं है कि – मैं नहीं हैं? शंका हमेशा असत्य में हुआ करती हैं – "मैं" हूँ – इसमें शंका नहीं इसलिए – "मैं" सत्य हूँ। "मैं" हूँ – इसका कभी अज्ञान नहीं होता – कभी किसी को – इसलिए "मैं" चित हूँ। और "मैं" हूँ – इससे वैराग्य नहीं – इसलिए – "मैं" आनंद स्वरूप हूँ। स्त्री से, पुत्र से, धन से, कलत्र से – इससे कभी वैराग्य हो जाता हैं। चाहे क्षण भर के लिए ही क्यों न हो – और शरीर से भी कभी – अगर बहुत दिन तक रोगी रहै – तो उससे भी कभी कभी वैराग्य हो जाता है – लेकिन मैं से अपने आप से वैराग्य होते नहीं देखा। यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि – मैं आनंद स्वरूप आत्मा हूँ। क्योंकि – वैराग्य हमेशा दुःख से होता है – आनंद से वैराग्य नहीं होता। किसी को अपने में से– अपने स्वरूप से – अपने आत्मा से वैराग्य इसलिए नहीं होता कि – मैं आनंद स्वरूप आत्मा हूँ। तीनों काल – तीनों अवस्थाओं में एक सा रहने के नाते – "मैं" आत्मा सत्य हूँ। तीनों काल, तीनों अवस्थाओं को "मैं" जानता हूँ। जाग्रत अवस्था को "मैं" जानता हूँ – स्वप्न को "मैं" जानता हूँ – सुषुप्ति को "मैं" जानता हूँ – मूर्छा को "मैं" जानता हूँ – समाधि को जानता हूँ – होशी को, बेहोशी को

"मैं" जानता हूँ – इसलिए "मैं" चित हूँ – चेतन हूँ। परम प्रिय होने के नाते "मैं" आत्मा आनंद स्वरूप हूँ। "मैं" सच्चिदानंद व्यापक तत्व आत्मा हूँ – परन्तु न मैं शरीर हूँ – न शरीर मेरा हैं – इसे अच्छी तरह से भली भांति जान लो। जी हां – हां जी – चलो अब जीव और ईश्वर का भेद बतायें। शिव –बड़ा खोदना पड़ा – ये न बताते तो सबके समझ में न आता ना। हर एक के हृदय में हृदयंगम नहीं होता – हर एक को समझ में नहीं आता। इसलिए – इतनी प्रकिया संक्षेप में हमको बतानी पड़ी।

माया ईस न आपु कहँ जानि कहिअसो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर माया प्रेरक सींव।।

हां जी –
अब चलिए – भेद पर रोशनी डालें – देखो भैया! जीव और ईश्वर का भेद – शिव – एक जीव – दूसरा ईश्वर – और तीसरा जीव ईश्वर का भेद। भला ये बताओ – कि – ये भेद किसमें हैं – ध्यान देना जरा – ये भेद जीव में है – कि ये भेद ईश्वर में हैं। खैर – जिस ईश्वर से जीव को अलग मानत हो – जदि ईश्वर से जीव भिन्न है – अलग हैं – तो प्रश्न होता है कि – वह ईश्वर भेदरूप है – कि अभेद रूप हैं। ईश्वर भेद रूप है कि अभेद रूप है – जदि कहो कि – ईश्वर भेदरूप है – तो भेद दो में होता है कि – एक में। तो भेद दो में होता है कि – एक में। भेद तो – दो में ही होता है भैया। तो अगर ईश्वर भेदरूप है – तो ईश्वर एक नहीं है तो फिर दो हैं। और जो पदार्थ दो होता है – वह नाशवान होता है – और ईश्वर अविनाशी है – तो ईश्वर दो नहीं है – एक है। जितने भी ईश्वर वादी हैं संसार भर में – वे सभी अपने अपने ईश्वर को एक मानते हैं। अच्छा – और सबका ईश्वर एक हैं। ईश्वर एक है – और भेद होता है दो में – तो ईश्वर जब एक है – दो नहीं है – तो ईश्वर भेदरूप न होकर हुआ

अमेद रूप। जब ईश्वर अमेद रूप हुआ – जब ईश्वर अमेद रूप है – तो फिर – ईश्वर और जीव का भेंद कहां – यह ब्रह्मास्त्र हैं। यह ब्रह्मास्त्र है – यह अमोघ अस्त्र हैं। समस्त संसार के जीव वादियों के लिए यह शर्त हैं। संसार के लिए यह शस्त्र है। हां – अगर तुम भगवान से जीव को भिन्न मानते हो तो – राम कहो – भगवान कहो – परमात्मा कहो – जो कुछ कहो – तो फिर वह परमात्मा – भेदरूप हैं कि अभेद रूप है – अगर वह भेदरूप है – तो – दो हो जायेगा। भेद दो में होता है – और परमाम्मा एक हैं। जब एक है – तो परमात्मा अभेद रूप हुआ। जब अभेद रूप है – तो जीव का भेद कहां और फिर जीव क्या इस फूल से भी भगवान का भेद नहीं है। ये भी भगवान है – ये भी ईश्वर है – ये भी माया है – ये भी भगवान है। श्रुतियां, स्मृतियाँ, शास्त्र, वेद, गीता, भागवत, रामायण, वेदपुराण, संत महात्मा – ये सब – उनका दिमाग थोड़ी खराब है – क्यों कहते हैं –

"वासु देवः सर्व मिति"

कण – कण भगवान है – इसीलिए –
भगवान तुमने कहा नहीं कि – प्रपंच का अत्यन्ता भाव हो गया। भगवान कहते ही – भगवान नाम लिया नहीं कि – प्रपंच खतम हो गया। क्योंकि – भगवान अभेद रूप हैं। जब अभेद रूप है – तो भगवान से किसी का भेद नहीं – सब भगवान हैं। कण–कण भगवान है – जर्रा जर्रा भगवान है – कतरा कतरा भगवान है – रेसा रेसा भगवान है – सब भगवान हैं। शिव - शिव इस युक्ति को नहीं भूलना – अच्छा – एक तो ये सिद्ध किया गया। तो स्वामी जी! क्या मैं भगवान हूँ – जी हां - मगर मानों मत कि – मैं भगवान हूँ। मानो मत – बल्कि जानों कि मैं भगवान हूँ – मानने में गल्ती हो जाती है - इसलिए मानों मत जानों। और अगर भगवान को हम अपना

पिता मानें और हम अपने को उसका पुत्र मानें तो – तो भी कोई हर्ज नहीं – अरे पिता ब्राह्मण है – तो क्या लड़का राजपूत होगा – बनिया होगा – गोड़ गहरा होगा। अगर पिता ब्राह्मण है – तो पुत्र भी ब्राह्मण होगा। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण। तो फिर भगवान का पुत्र भगवान होगा कि – भगवान का पुत्र – टेटकू। ऐं – इस दृष्टि से भी जीव – भगवान से भिन्न नहीं हैं। किसी काल में – किसी अवस्था में– जी हां – स्वामी जी! हम अंश मानें तो – तो कोई बात नहीं मानों ना तुम – और रामायण में तो गोसाई जी ने लिखा भी हैं। लिखा भी है भैया! जरा सुना दो! उत्तर काण्ड में चौपाई आती हैं।

ईश्वर अंश जीव अविनासी।
और – ईश्वर अंश जीव अविनासी।
और – ग्यान के पंथ कृपान के धारा।
और – जनम जनम मुनि जतन कराहीं।

आधी आधी चौपाई मसकत हैं – और बेतुकी –
लगै चाहे न लगै – ठीक – रामायण के उत्तर काण्ड में ज्ञान दीपक का प्रसंग आता है – वहाँ की चौपाई है – सुनों। अब रामायणी बैठे हो – सुनों –

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। 2
सो माया बस भयउ गोसाई। बँध्यो कीर मरकट की नाई। 3
राम० उत्तर०दो–117– पृ० 595

पहले चौपाई का अर्थ कर लो – फिर इसकी व्याख्या करैं।

ईश्वर अंस जीव अविनासी।

ये जो ईश्वर अंश – इसको अलग रखो – फिर इसको अभी बतायेंगे। जीव अविनासी – जीव जो है – अविनासी हैं। अविनासी कहते हैं – जिसका कभी नास न हो। क्योंकि ! जब जीव अविनासी है – तो जीव अजन्मा भी होगा

फिर। अब देखो! विचार का कितना महत्व हैं। अब जीव जब अविनासी है – तो जीव अजन्मा भी हैं। जब इसका नारा नहीं – तो इसका जन्म भी नहीं। केवल अविनासी ही शब्द पर विचार करने से – जीव के जन्म मरण की व्याख्या हाल हो गई। जीव अजन्मा है – जीव जन्म नहीं लेता – ओ हो – पता नहीं लोग – विचार से क्यों दुश्मनीं करते हैं – हां – जीव अविनासी है – तो जीव अजन्मा हैं। तो अजन्मा अविनासी होने के नाते – जीव हो गया सत! क्योंकि – जीव का ही – जन्म मरण नहीं होता – तो जीव अजन्मा हैं। तो जीव सत्य हो गया। जीव अविनाशी हैं। अब आगे आवो चेतन – तो सत्य होते हुए जीव चित है – चेतन है – अमल हैं। जीव का सत पना –

"ईश्वर अंस जीव अविनासी।"

अविनाशी से निकला सत्य। चेतन हुई हैं – लिखा है चौपाई में चेतन से चित निकला – और अमल – जीव में मल नहीं है – निर्मल है – मल रहित है – अमल हैं। और सहज – जीव का सत पना – जीव का चित पना – ये कृत्रिम है – या स्वाभाविक हैं? मानस कार कहते हैं – नहीं ये सहज हैं। स्वभावतः जीव सत है – स्वभावतः जीव चित है स्वभावतः जीव अमल हैं। तो जीव फिर सुखरासी है कि दुःख रासी हैं। तो मानस कार लिखते हैं कि – नहीं ये सुखरासी हैं। आनंद का ढेर है – आनंद का सागर है ये । और कहीं खींचा तानी का अर्थ नहीं है। जो शब्द जहाँ जैसे रखे गये हैं – मानस कार ने – उन्हीं शब्दों का हम मायने बता रहे हैं। पढ़े लिखे हो – समझ लो। तो ये जीव हुआ। सत् – चित – आनंद – हो गया – सच्चिदानंद।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

तो जीव हुआ – सत – चित – आनंद – जब जीव – सत, चित, आनंद है और

राम सच्चिदानंद दिनेसा।

अब मेल करते चलो – अब जीव जब सत, चित आनंद है – तो फिर – मानस कार ने चौपाई में – "ईश्वर अंस" – क्यों लिखा? सूनों हम बतायेंगे। सबसे पहले – आप ये विचार करिये – जीव – ईश्वर अंश लिखा है – ये कौन से ईश्वर का अंश हैं? सगुण ईश्वर का अंश है कि – व्यापक ईश्वर का अंश हैं। अगर – सगुण ईश्वर का अंश जीव को मानोगे – तो जीव मानें टुकड़ा तो सगुण का टुकड़ा भी – सगुण ही होना चाहिए – लेकिन – आज दिन तक – किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान करने वाले ने जीव को देखा नहीं हैं। अगर ये सगुण का अंश होता तो – माइको स्कोप से दिख जाता तो भैया! आज तक इसको किसी ने देखा नहीं हैं। इसलिए जीव सगुण का अंश नहीं सिद्ध होता – और फिर सगुण जो होता है – वह सावयव होने के नाते – सीमित होता हैं। लिमिटेड होता है – और जीव वादी – जीव को अनेक मानते हैं। तो अगर सगुण से जीव निकलते रहेंगे – धड़ाधड़ – तो एक दिन सगुण भी खतम हो जायेगा। तो इसलिए जीव – सगुण ईश्वर का अंश नहीं सिद्ध होता – अच्छा – अगर इसको व्यापक ईश्वर का अंश मानते हो। तो व्यापक ईश्वर निराकार होता है– तो व्यापक ईश्वर निराकार होता हैं। निरयवय होता है – जैसे आकाश व्यापक हैं। तो व्यापक ईश्वर में – अंशा अंशी भाव होते नहीं। जैसे आकाश में पोल में टुकड़े हिस्से करोगे तो कैसे कर सकते हो – तो व्यापक ईश्वर में अंशा अंशी भाव नहीं – व्यापक ईश्वर अखण्ड होता है – निरंश होता है – अद्वैत होता है अविचल होता है – अजन्मा और अविनासी होता हैं। ये व्यापक ईश्वर के लक्षण हैं – इसमें अंशा अंशी भाव – होते नहीं – इसलिए जीव किसी का भी अंश सिद्ध नहीं होता। जीव को यदि छोटा बड़ा मानों कि –हाथी का जीव हाथी जैसा– और चींटी का जीव चींटी जैसा – तो हाथी का जीव जब

अपना – कर्म फल भोगने के लिए – चींटी के शरीर में जायेगा तो जितना बड़ा हाथी – उतना बड़ा जीव तो भला चींटी में जायगा – तो क्या मुसीबत आयेगी उसको – उस पर। वो कैसे जायेगा चींटी में। और चींटी का जीव – जब हाथी में जायगा – अपना कर्म फल भोगने – तो चींटी उतना स्थान को ही चेतन कर सकेगा – जितना छोटा वह चींटी है – बाकी हाथी का शरीर तो – उसका सूना पड़ा रहेगा। जीव को छोटा बड़ा मानने में ये उपाधि है – ये मुसीबत आती हैं। तो जीवन छोटा होता हैं– न जीव बड़ा होता हैं। अब न जीव – सगुण का अंश है – न व्यापक ईश्वर का अंश हैं। फिर – गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने ईश्वर अंश क्यों लिखा? हां – हम बतायेंगे – महान पुरूषों के
वाक्य का खंडन नहीं होता। महान पुरूषों के वाक्य का तात्पर्य लगाया जाता हैं। और फिर श्री कृष्ण भगवान ने भी – गीता के पन्द्रहवें अध्याय में कहा हैं –

ममै वांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः। गो०15–7

हे अर्जुन! ये जीव मेरा ही सनातन अंश हैं।

ममै वांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।गी – 15 –7

अब ईश्वर अंश क्यों लिखा इस पर हम बोल रहे हैं – सुनों - समझो विषय को –

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटा काशैरिवोदितः।
घटादिवच्च सङ्घातैर्जाता वेतन्निदर्शनम्।।3।।

गौड़पादीय कारिका – अद्वैत 3 प्रकरणम् पृ०444

देखो –
जैसे – आकाश है ये – (गिलास हाथ में लेकर समझा रहे हैं) ये जो आकाश है – ये कहां से कहां तक है – इसका आर पार नहीं हैं। व्यापक है – निरयवय है ये – अब इसके तुम खंड नहीं कर सकते – टुकड़े हिस्से नहीं हो सकते। मगर यही

आकाश – इस घड़े के अन्दर या इस गिलास के अन्दर – गिलास कहो या घड़ा कहो एक ही मतलब हैं। अब इसके अंदर जो पोल है न – ये आकाशै तो हैं। यही आकाश अब इसके अन्दर हो ने से – इसका नाम पड़ गया घटाकाश अब ये आकाश – कहीं बाहर से इसमें आया नहीं है – और इसके टूटफूट जाने पर – इससे निकलकर के – इसको कहीं बाहर जाना नहीं हैं। दस घड़े हों – घड़े एक दूसरे से उत्तरोत्तर छोटे अथवा बड़े हों – बड़े घड़े में आकाश – छोटे में छोटा– मझोले में मझोला – इसी किसम से – आकाश तो एक का एक है – मगर घट उपाधि के कारण – दस घड़े में छोटा बड़ा दस आकाश मालूम होगा। मगर – आकाश दस नहीं – एक ही हैं। सिर में रहने से सिराफाश – कंठ में रहने से कंठा काश – हृदय में रहने से हृदया काश – उदर में रहने से उदराकाश – महाकाश मंडपाकाश वगैरह – इत्यादि। तो आकाश जिन जिन पदार्थो में रहता है – उन उन पदार्थे का नाम आकाश रख दिया जाता हैं। जैसे – घटाकाश, मठांकाश इत्यादि। जघपि आकाश निरंश हैं। आकाश अखंड है – मगर घट उपाधि के कारण – निरंश और अखण्ड आकाश को – घटाकाश कहते हैं। तो घटा काश माना जाता हैं घटा काश वस्तुतः होता नहीं हैं। यह – इस उपाधि के कारण – इसी का नाम पड़ गया घटाकाश । इसी तरह –

आत्मा ह्माकाश वज्जीवैर्घटाकाशै रिवोदितः।। 3।।

गौड़ पा० का० अद्वैत 3 प्रक पृ० 444

भगवान आत्मा जो चैतन्य घनभूत परिपूर्ण है – व्यापक तत्व आकाश वत समझो! भगवान आत्मा को। शरीरादिक जो प्रपंच है – घट मठादिक – इनको समझो ! और इनमें जो व्यापक चेतन हैं – उसको जीव कह लो। तो – ऐसे घटादिक पदार्थो में – आकाश व्यापक होने से – घटाकाश नाम हो गया। और घटाकाश को हम लोग – आकाश का अंश मान

सकते हैं – मानते हैं। वस्तुतः – आकाश में कोई अंशा अंशी भाव नहीं होता। जबकि – ये घटाकाश सोपाधिक अंश है भला। घटाकाश सोपाधिक अंश है – निरूपाधिक अंश नहीं हैं। उपाधि विशिष्ठ हैं। इसी प्रकार – शरीर उपाधि इन्द्रिय है – मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंच प्राणादिक हैं – तो इनको घट मठादिक समझो! और इनमें व्यापक हैं। इनमें भगवान आत्मा व्यापक है – सब में भरा हुआ है – एक दम लबा लब है – भगवान को तो व्यापक कहते ही हो। चाहे जान के कहो या बेजान के कहो। तो जैसे – जिन जिन पदार्थो में आकाश व्यापक होता है – उन उन पदार्थो में – आकाश नाम फिट कर दिया जाता है। जैसे – घटाकाश – महाकाश इत्यादि। इसी प्रकार से – चेतन भगवान परमात्मा – जिसे आत्मा कहते हो – सब में व्यापक है – और जिन जिन पदार्थो में व्यापक होता हैं – उनका उनका नाम – उसमें रख दिया जाता हैं। जैसे – दस घड़े में दस आकाश – ऐसे दस शरीर में दस जीव। वस्तुतः – जीव कोई अंश थोड़े ही हैं। वह तो स्वयं साक्षात् परमात्मा सच्चिदान्द घनभूत हैं। जी हां –

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटा काशै रिवोदितः।
घटा दिवच्च सड.घातैर्जाता वेतन्निदर्शनम्।।3।।

गौड़ पा० का० अद्वैता० 3 प्रकरणम् पृ० 444

पंच प्राणादिक – घटादिवच्च – । इन उपाधियों के ही कारण– व्यापक तत्व होने से – भगवान का ही नाम हो गया – "जीव"

"घटा दिवच्च सघ्डातै – इसका नाम हो गया अंश। जैसे – घटाकाश – महाकाश हैं। भगवान आत्मा – आकाशवत परिपूर्ण सबमें व्यापक – शरीरादिक प्रपंच के कावण – पंच प्राणादिक – "घटादिवच्च" घटाकाश – महाकाश का अंश हैं।

घटे भिन्ने यथा काश आकाशास्या यथा पुरा।

एवं देहे मृते जीवे ब्रह्म सम्पद्यते पुनः।।

समझना विषय! जिस तरह – घड़ा फूट जाने पर – इस घड़े के अन्दर का जो आकाश है – वह कहीं जायेगा? कहीं नहीं जायेगा। ये घड़ें के अन्दर का जो आकाश – घटाकाश जैसे महाकाश हो जाता हैं। क्योंकि बाहर से आया नहीं है – तो जाना कहां हैं इसकों। जिस तरह से घटाकाश – महाकाश हो जाता हैं। इसी तरह से – देह के नष्ट हो जाने पर – यह जो जीवात्मा है – चेतन तत्व – वह साक्षात् परमात्मा हो जाता हैं। भैया! कहीं बाहर से आया नहीं हैं। अच्छा देखो – हमारे हाथ के तरफ देखना – बाहर से कहीं आया नहीं है भला – अब देखो – ये परिधि बना रहे हैं (दोनों हाथ से परम पू० श्रीस्वामी जी परिधि बना रहे हैं) अब देखो – ये परिधि के अन्दर आ गया। अब जन्म हो गया इसका – अब आ गया इस परिधि में। मगर – घटाकाश के स्वरूप का विचार करो तो– घटाकाश – महाकाश है और महाकाश के स्वरूप का विचार करो तो घटाकाश – महाकाश हैं। अब इसी तरह – जीव के स्वरूप का विचार करो तो जीव भगवान है – और भगवान के स्वरूप का विचार करो तो जीव भगवान हैं। हर हालत में – किसी भी दृष्टि से समझ लो भैया! सोचलो – जी हां –

घटे भिन्ने यथा काश आकाशा स्याद यथा पुरा।
एवं देहे मृते जीवे ब्रह्म सम्पद्यत्ते पुनः।।

जैसे – घट के फूट जाने पर घटाकाश महाकाश हो जाता है– ऐसे – देह के छूट जाने पर जो जीवात्मा हैं – वह साक्षात् परमात्मा हो जाता हैं। क्योंकि पामात्मा हई है – हो क्या जाता हैं। ये तो एक कथन की शैली हैं। अरे – घटाकाश– महाकाश है ही – फूटै तो घटाकाश महाकाश है – और घट न फूटै तो भी – घटाकाश – महाकाश है – हर हालत में। यही हकीकत है – यही सच्चाई है। और बाकी रह गया गमना– गमन। ये तो भगवान आत्मा लखाया जा रहा है न। ये तो

भगवान आत्मा के बारे में – मतलब जो वास्तविक तत्व है – उसके बारे में तूमको बताया जा रहा हैं। अब बाकी रह गई बात जीव की – तो जीव जी साहब! अपने आप को संसारी जीव मानना – ये परदेश है – और अपने आपको जैसा मैं हूँ – वैसा ही जानना – ये स्वदेश है। तो भैया! स्वदेश की बातें हम कर रहे हैं – तो स्वदेश में आकर देखो स्वदेशी दृष्टि में देखो – तो फिर कोई आता है – न काई जाता हैं। शास्त्र भी यही कहते हैं – और संत महात्मा भी – और हमारा स्वयं का अनुभव हैं। जी हां –

माय ईश न आप कहँ जानि कहिअ सो जीव।

अच्छा – और प्रश्न में लक्षमण जी ने कहा है कि –

शोक, मोह, भ्रम जाय।

जब तक अपने आप को संसारी जीव मानता है – तब तक शोक

भी है मोह भी है – और भ्रम भी है – और नाना प्रकार के विकार

हैं। और भेद बुद्धि जब निकल जाती है – भेद का जब अभाव हो जाता हैं – अपनी असलियत को – अपनी हकीकत को – अपनी सच्चाई को – अपनी वास्तविकता को – जब भली भांति समझ लिया जाता हैं। तब फिर न शोक है – न मोह है – न भ्रम है – और यही हकीकत हैं। और तभी भगवान के श्री चरणों में प्रीति होती हैं। इसके पहले नहीं होती। जी हां – अरे भाई!

माया ईस न आप कहँ जानि कहि अ सो जीव।

अच्छा फिर देखो –

अब जीव का संसार कहाँ तक है – इसकी कोई सीमा नहीं हैं। देखो – मतलब ये है कि – अपने आपका – देह मानना – जीव मानना – कुछ भी मानना – खैर – जीव भाव तो हइ है –

अपने आपको भगवान भी मानना – यहाँ तक जीव भाव हैं। देखो – मतलब ये है – इसमें भी कुछ राज है, रहस्य हैं। अपने आपको भगवान भी मानना – यहाँ तक जीव भाव हैं। मगर अपने आपको भगवान जानना जीव भाव नहीं है – भगवान भाव हैं। तो अब प्रश्न होता है कि – भगवान जानना क्या हैं?

अरे – अपने आपको – "मैं को" – कुछ भी न मानना ही – यही अपने आपको भगवान जानना हैं। ऐसा कहो – अब हल हुआ कि नहीं। जान दे ना – हां – भइगे। अपने आपको भगवान भी मानना जीव भाव है – तो क्या भगवान जानना जीव भाव नहीं है – तो भगवान जानना क्या हैं? अरे – अपने – "मैं" – को कुछ भी न मानना ही – यही अपने आपको भगवान जानना है। ये बात – क्योंकि – भगवान अपने को – "मैं भगवान हूँ" ऐसा भी तो – नहीं कहता – इसलिए हम उसको भगवान कहते हैं। यही उसका बड़प्पन हैं – यही उसकी पोजीशन है, उसकी यही ईज्जत है अच्छी बात है – तो फिर अब एक बेशर्मी का गजल सुनाते हैं। बेशर्मी की गजल सुनों – अब मौका नहीं है – नहीं तो खुदा की कम बख्ती भी सुनाते। शरद नहीं है– हां है – क्या प्रमाण हैं। हंसी –

गजल – 64

फकीरी का

न कोई तमन्ना ना ख्वाहिशातें
दुरंगी दुनियाँ से शर्म क्या हैं।
पिया हूँ प्याला जब बेखुदी का
मन मानें नाचूँ तो शर्म क्या हैं।।1

तमन्ना = आशा। ख्वाहिशातें = इच्छा।

पिया हूँ प्याला जब बेखुदी का, मन माने नाचूँ तो शर्म क्या हैं।

खुद पे ही कुर्बा मैं हो चुका हूँ।
वजूद सारा मिटा चुका हूँ।
यह ख्वाबे पुतला अभी फना हो
अगर नहीं डर तो शर्म क्या है।। 2
नहीं है परवाह कभी किसी की,
न कुछ भी लेना न कुछ भी देना।
रहूँ बरहना या पहनूँ बुर्का,
ऐसे बेशर्मों को शर्म क्या है।। 3

परशिमन में बरहना कहते हैं – नंगा रहने को।

सम्भालने से नहीं सम्भलती
रग रग में आकर समा गई हैं।
छलक रहीं है अलमस्त मस्ती,
मस्ती परस्तों को शर्म क्या हैं।। 4
मैं गुलरूबा हूँ – इस गुलचमन का,
मैं दिल रूबा हूँ हर एक दिल का।
दरिया ए बेदिल हुआ हूँ बेदिल,
बेदिल परस्तों को शर्म क्या हैं।। 5

गुलरूबा = फूल की खुशबू –फूल की सुगन्ध।
गुल = चमन बगीचा!
दिलरूबा = दिल की सुगन्ध, दिल की जान।

दरिया ए बेदिल हुआ हूँ बेदिल,
बेदिल परस्तों को शर्म क्या हैं।। 5
किया हूँ फांका गमी खुशी का,
है कोई मेरा न दोस्त दुश्मन।
दिमागो दिल से मोहताज "मुक्ता"
खफतुल हवासों को शर्म क्या हैं।। 6 ।।

खफ तुल हवास = न दिल रहा न दिमाग रहा – जिसको अंग्रेजी में क्रेक माइन्ड कहते हैं – आधा पागल।

न कोई तमन्ना न ख्वाहिशातें –
दुरंगी दुनियाँ से शर्म क्या हैं।
पिया हूँ प्याला जब बेखुदी का –
मन मानें नाचूँ तो शर्म क्या है।। 7

माया ईस न आपु कहँ जाने कहिअ सोई जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर माया प्रेरक सींव।।
राम अख्य. दो–15 पृ. 368

राम अमित गुन सागर थाह कि पावई कोई।
सतन्ह सन जस कछु सुँ नेउंतुम्हहि सुनायेउ सोई।।
सियावर राम चंद्र की जय।
परम पूज्य श्री स्वामी जी – (विनय पत्रिका पद नं. 120)

हे हरि! कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।। 1
अर्थ अविद्य मान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसांई।
बिन बाँधे निज हठ सठ पर बस परयो फीरकी नाई।। 2
सपने व्याधि बिबिध बाधा जनु मृत्यु उपस्थिति आई।
वैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई।। 3
श्रुति–गुरू– साधु – समृति – संमत यह दृश्य असत दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, बिपति सकै को टारी।।4
बहु उपाय संसार–तरन कहँ, बिमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास मैं –मोर मये बिनु, जिउ सुख कबहुँ न पावै।। 5
हे हरि! कसन हरहु भ्रम यारी।

भाग = 3

"यो हरिः सः शिवः साक्षात्"

दैवी ह्येषा गुण मयी मम माया दुरत्ययया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते।। गी० 7–14

अब माया का थोड़ा सा करिश्मा सुन लो – माया का चमत्कार माया करती क्या हैं?

नित्य – निरूपम निरंश केऽप्य खण्डे,
मयि चिति सर्व – विकल्पादि शून्ये।
घट यति जगदीश – जीव भेदं,
त्वघटित घटना पटीयसी माया।। 1

(माया पंचकम्० मुक्तोद्गार पृ० 56)

नित्य = उपमा रहित। निरंश = अखण्ड।

नित्य – निरूपम निरंश केप्य खण्डे, मयि चिति सर्व – विकल्पादिशून्ये।

समस्त विकल्पों से रहित – मुझ चिदात्मा सनातन ब्रह्म में – जो माया – जीव और ईश्वर – दो का भेद बना देती हैं। अरे–. जीव और ईश्वर – दो का भेद डाल देती हैं। मुझ अद्वितीय अखण्ड परमात्मा में – तो –

"अघटित घटना परीयसी"

अर्थात् – माया कैसी है –
जो घटना न घटने वाली है – उसको भी घटाकर दिखा देने में – बड़ी चतुर है – गरीयसी = बड़ी चतुर हैं। तोइस कथन से – जीव और ईश्वर का भेद – यह माया कृत भेद है वस्तुतः नहीं हैं।

नित्य निरूपम निरंश केऽप्य खण्ड़े,
मयि चिति सर्व – विकल्पादि शून्ये।
घटयति जगदीश – जीव भेदं,

त्यघटित – घटना परीयसी माया।। 1
मुक्तो दगार – मायापंचकम्

श्रुति–शत निगमान्त–शोध कानप्य,
ह ह धनादि–निदर्शनेन सद्यः।
कलुषयति चतुष्पदाद्य भिन्ना न,
घटति–घटना–परीयसी माया।।2।।

बड़े – बड़े प्रकाण्ड विद्वान – बड़े बड़े सन्यासी– जो वेद के महावाक्यों का संशोधन करते हैं। "तत्व मसि" – जहात अजहात – भागत्याग लक्षणों द्वारा – "तत – त्वं – असि" – वह ब्रह्म तू है – इत्यादि – इस प्रकार वेद के महावाक्यों का –

"अहं ब्रह्माऽसि – तत्व मसि"
"अय मात्मा ब्रह्म – प्रज्ञानं ब्रह्म"

वेदों के ये जो महावाक्य हैं – इन महावाक्यों का जो संशोधन करते हैं – विवेचन करते हैं – जो व्याख्या करते हैं – बड़े बड़े विद्वान सन्यासी – बड़े बड़े विद्वान ब्राह्मण – जो वेदों की व्याख्या करते हैं। हाय रे ठगनी –

श्रुति – शत निगमान्त – शोध का नप्य –
अरे – ह ह धनादि – निदर्शनेन सद्यः।

महावाक्य के संशोधन करने वालों विद्वानों के भी हृदय में कितना लोभ पैदा करती हैं। अरे – भला गृहस्थ जाय अदालत में तो – (जाय) अरे भला – परन्तु – जो वेदान्त पढ़ाते हैं – महावाक्यों का संशोधन करते हैं – विवेचन करते हैं – संसार तीन काल में नहीं हैं। यथारज्जौ सर्पवत् – और खड़े हैं कचहरी में – क्या करोगें – हंसी – अक्ल मंदारा इशारा काफी है – इतना ही कह देना काफी हैं। इसीलिए भैया! संतों का कहना हैं। कि – जिस गृहस्थ के पास कौड़ी न हो – वह दो

कौड़ी का – और – जिस साधु के पास कौड़ी हो – वह भी दो कौड़ी का – अरे – जब घर बार छोड़ते हैं – वैराग्य की हालत में प्रतिज्ञा करके छोड़ते हैं।
कि – भूखे मर जायेंगे – मगर किसी के सामने – (परम पू० श्री स्वामीजी हाथ फैलाकर बता रहे हैं) ऐसा हाथ न फैलायेंगे– पेड़ के नीचे रह जायेंगे – लेकिन – मकान कुटी न बनायेंगे। लेकिन – मगर – परन्तु – धन्य है इस ठगनी को–

श्रुति – शत – निगमान्त – शोध कानप्य
ह ह धनादि – निदर्श नेन सद्यः।
कलुष यति चतुष्यदाद्य भिन्ना न,

चतुष्यद – याने – चार पैर वाले जानवर हैं। और उस महावाक्य के संशोधन करने वाले जो विद्वान – चाहे वह – गृहस्थ हो या सन्यासी हो – दोनों में कोई भेद नहीं रखती माया – इतना प्रलोभन – धन इत्यादि में – मकान बनाना – आश्रम बनाना –
धन इकट्ठा करना – क्या करोगे। ये माया का करिश्मा है – ये माया का ही चमत्कार हैं।

"श्रुति – शत – निगमान्त – शोध कानप्य"

भैया! जब सन्यास लिया जाता है – तब सन्यास ग्रहण करने के समय में प्रेत मंत्र सुनाया जाता है – सन्यासी के कान में – जैसे – आप लोग गृहस्थ हो – तो गुरू से दीक्षा लेते हो कान में – इसी प्रकार से – सन्यास लेने के टाइम में – सन्यासी को– प्रेत मंत्र की दीक्षा दी जाती है – उसको प्रेत मंत्र कहते हैं। गृहस्थ के लिए जैसे – शिव मंत्र है – राम तारक मंत्र है।– उसको प्रेत मंत्र दिया जाता है कान में। जी हां – सुना दूँ प्रेत मंत्र – चाहे कपड़ा न रंगो – तुम्हारी मर्जी हैं। मंत्र तो सुन लो – अरे –जब हम भगवान प्रत्यक्ष दिखा रहे हैं – तोमंत्र

सुना देने में क्या हर्ज हैं।

"ॐ भूः सन्न न सन्न मया" –

"ॐ भुवः सन्न न सन्न मया" –

"ॐ स्वः सन्न न सन्न मया" –

"ॐ भू भुवः स्वः सन्न न सन्न मया"

यह प्रेत मंत्र है – क्या मतलब है इसका।

आज मैंने – "भूः सन्न न सन्न मया"

भू लोक का त्याग किया।

"भुवः सन्न न सन्न मया"

आज मैंने – भुवर लोक का त्याग किया। ये बीच का लोक है– स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का जो मध्य लोक हैं – उसको भुवर लोक कहते हैं।

"स्वः सन्न न सन्न मया"

आज मैंने स्वर्ग लोक का त्याग किया – फिर –

"र्भूभुवः स्वः सन्न न सन्न भया"

आज मैंने तीनों लोकों का त्याग किया – यह दीक्षा हैं। परन्तु– हाय रे माया।

"अघटित घटना परीयसी।"

जो बात न घटने वाली – अरे – वह भी घटा कर दिखा देती हैं। जी हां – बड़ी चतुर है – बड़ी सयानी हैं।

श्रुति शत –निगमान्त – शोध कानप्य
ह ह धनादि निदर्श नेन सद्यः।
कलुष यति चतुष्पदाद्य भिन्ना न
घटति – घटना– परीयसी माया।। 2 ।।

यह माया का खेल हैं। मुक्तोद् गार – मायापंचकम

अपगत – गुण – वर्ण जाति भेंदे
सुख – चित – विप्र – विडाद्यहं क्रतिं च।
भ्रमयति भव सागरे नितान्ते
त्व घटति – घटना – पटीयसी माया ।।3।।

मायापंचकम्

यघपि मैं चैतन्य घनभूत सनातन ब्रह्म आत्मा हूँ – मुझमें – वर्ण भेद, जाति भेद, आश्रम भेद नहीं है – परन्तु जो माया – मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं शूद्र हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं गृहस्थी हूँ, मैं वानप्रस्थी हूँ, मैं सन्यासी हूँ, मैं उदासी, मैं निर्वाणी, मैं निर्मले, मैं निरंजनी, घीसापंथी, कुण्डा पंथी, गोबर पंथी, निराकारी, राम सनेही – आजकल तो कोई गिनती नहीं है – मैं हिन्दू, मैं मुसलमान, मैं ईसाई, मैं यहूदी, मैं पारसी आदि। यघपि मुझ आत्मा में – जाति भेद वर्ण नहीं है – परन्तु जो माया इस प्रकार का भेद डाल देती है – और भेद बुद्धि के ही कारण –

"भव सागरे नितान्ते भ्रमयति"
अनादि काल से संसार में – भव सागर में घूम रहा हैं।
अपगत – गुण – वर्ण – जाति – भेदे
सुख – चित – विप्र – विडाद्य हं क्रतिं च।
भ्रम यति भव सागरे नितान्ते
त्व घटति – घटना – पटीयसी माया।। 3 ।।

सुख चिद् खण्ड विबोध मदवितीयं
वियदनलादि – विनिर्मिते नियोज्य। 4

यद्यपि – "मैं" – चैतन्य धन भूत आत्मा एक हूँ – मुझ आत्मा के अतिरिक्त दूसरे की सत्ता नहीं हैं।
परन्तु – जो माया – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश – इन पंच महाभूतों की कल्पना कर देती है –
यघपि ये पंच महा भूत नहीं हैं।
न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है और न इसके कार्य हैं।

स्फुट यति सुत दार – गेह – मोहं
त्व घटति – घटना – पटीयसी माया।। 4 ।।

मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा कलत्र – यह –

स्फुट यति सुत दार – गेह – मोहं – शिव –

जरा सांस लेने दो – हंसी –
घबड़ाहट हो गई – जरा दम लेने दो – क्योंकि –
स्फुट यति सुत – दार – गेह – मोहं – । स्फुटयति –
और जो दम है – इसी में है – दम –
हंसी –
बाकी सब बेदम हैं।

सुखचिद् खण्ड विबोध मद् वितीयं
वियदनलादि – विनिर्मिते नियोज्य।

अरे – मुझ अद्वितीय – चैतन्य घनभूत भगवान आत्मा में –
वियद कहते हैं – आकाश को –
पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश की – पंच महाभूत की –
कल्पना करती है – है नहीं पंच महा भूत –
जब पंच महाभूत नहीं – तब पंच महाभूत के कार्य भी नहीं –

सुखचिद् खण्ड विबोध मद् वितीय
वियदनलादि – विनिर्मिते नियोज्य।
स्फुट्यति सुत – दार – गेह – मोहं
त्वघटित – घटना – पटीयसी माया।। 4 ।।
मुक्तोद्गार – माया पंचकम् पृ. 56

माया – अपघटित घटना पटीयसी–
विधि हरि – हर – भेद मप्य खण्डे बत्
विरच्य बुधानपि प्रकामम्

भ्रमयति हरि – हर – विभेद भावान
घटति – घटना – पटीयसी माया।।

बत = आश्चर्य है –
बुधानपि – मूर्खा नपि नहीं।

कहते हैं – यद्यपि – मैं परमात्मा, सर्वत्मा हूँ, सर्व का सर्व हूँ एक का एक हूँ – परन्तु जो माया – ब्रम्हा – विष्णु – महेश– तीन का भेद बना देती है। विधि, हरि, हर – तीन का भेद बना देती है। और फिर – मामूली नहीं – मूर्खानपि नहीं अरे – जो बुधानपि – बड़े – बड़े जो विद्वान हैं – उनके हृदय में भी – एक का तीन बना देती है। बत् – माने आश्यर्च है – खेद है।

भ्रम यति हरि – हर विभेद भावान
अघटित – घटना – पटीयसी माया ।।5।।
मुक्तोदगार माया पंचकम्।

और बताने वाले बताते भी हैं – कि – देखना – भगवान शालग्राम की मूर्ति पर बेलपत्र नहीं चढ़ाना। सीधे नरक जावोगे। क्योंकि – शास्त्र और नरक का पासपोर्ट तो हमारे पास है। भगवान शिव की लिंग पर तुलसी नहीं चढ़ाना – क्योंकि – सीधे नरक जावोगे – कुछ नहीं – सब दम्भ है – सब फालतू बात है। भाई – भाई में भेद – बाप बेटा में भेद– अड़ोसी पड़ोसी में भेद – तो फिर – भगवान में भी भेद – यह माया भगवान में भी भेद डाल देती है। बाप बेटा में भेद – भाई – भाई में भेद – जैसे – ब्याह हुआ – कि माया आई – तो माया आई । (श्रोता कह रहे हैं कि – साथ में माया ले आती है) तो परम पू. श्री स्वामी जी कहे कि – साथ नहीं लाती दाऊ वह खुद ही भेद है। हंसी –

बाप बेटा में भेद – भाई – भाई में भेद –अरे – घर जब फूटता है – तो माया के ही कारण फूटता है। हंसी – अरे ब्रम्ह में भेद कहाँ – खैर – भाई – भाई में फूट हो, बाप बेटे में फूट हो – तो कोई बात नहीं – भगवान में भी फूट – हाँ भैया – जब श्री राम ने जब भगवान श्री राम के द्वारा रामेश्वर की स्थापना हुई है – विजयलिंग की स्थापना हुई – लंका जाने के प्रथम – विजयलिंग की – रामेश्वर की स्थापना हुई है – मगर – वाल्मिकी जी ने लिखा है कि – भगवान जब लंका जीत कर आये हैं – तब रामेश्वर की स्थापना हुई है। खैर – कभी भी हुई हो – अपने को इस पचड़े में नहीं पड़ना है। खास बात जो है – उसे बताना है। अच्छा – रामेश्वर की जब स्थापना हुई – तो अब यह विचार होने लगा कि स्थापना तो हुई – लेकिन अब इसका नाम क्या रखा जाये। तो ये तय हुआ कि श्री राम बैठे थे – उन्होंने कहा कि इसका नाम रामेश्वर है। तब ये विचार होने लगा कि – रामेश्वरका अर्थ क्या किया जाये। तो श्री राम बैठे थे – तो भगवान श्री राम ने कहा कि – इसमें तो हम – षष्ठी तत् पुरूष समास करेंगे।

"रामस्य ईश्वरः – रामेश्वर।"

"राम के जो ईश्वर – इसलिए – इनका नाम रामेश्वर है। तो भगवान शिव भी बैठे थे – वे कहने लगे कि – महराज भगवान! हम भी तो समास करेंगे न इसमें – तब भगवान ने कहा कि – हाँ – आप भी बड़ी खुशी से कर सकते हैं – आप भी स्वतंत्र है। श्री भगवान शंकर समास करते हैं कि –

"रामः ईश्वरोः यस्य"

अरे – राम हैं ईश्वर जिसके – बहु ब्राही समास हो गया। यह देखो! अब श्री राम ने षष्ठी तत् पुरूष समास किया – और – भगवान शंकर ने बहु ब्रीही समास कर डाला – "राम हैं ईश्वर जिसके" अब बानरी सेना बैठी है – हनुमान, सुग्रीव, नल नील,

अंगद, जाम्बवान – आदि – इनसे कहा गया कि – भैया! तुम लोग कौन सा समास करोगे। रामेश्वर में – तो – बन्दरों ने कहा।

"कपयः कर्म धारयः"

हम लोग महाराज – कर्म धारय समास करेंगे।

"रामस्य चासो ईश्वरः रामेश्वरः"

अरे – राम ही शिव – और शिव ही जो राम महाराज! हम लोगों की दृष्टि में तो – तुम दोनों एक ही हो। अब तुम अपने में चाहे पचास बनते रहो – हमको क्या करना है। हंसी – तो भैया! जितने उपासक बैठे हो – चाहे शिव के हो – चाहे विष्णु के चाहे कृष्ण के – चाहे राम के, चाहे नारायण के, चाहे शक्ति के – करो परन्तु – भेद बुद्धि को त्याग कर उपासना करो। शालीग्राम की उपासना करो तो –

"ओम नमो शम्भवाय च नमो भवाय च, नमः शंकराय च।"

इस तरह – शिव मंत्र से करो और डट के बेल पत्ती चढ़ाओ- भगवान शालीग्राम को – अच्छा – और भगवान शंकर को स्नान कराओ तो –

शांताकरं भुजगशयनम पद्म नामं सुरेशं
विश्वाधारं गगन सदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मी कान्तं कमल नयनं योगिभिर्ध्यान गम्यं
वन्दे विष्णुं भव भय हरं सर्व लोकैक नाथम्।।

भगवान विष्णु के मंत्र से – भगवान शंकर का पूजन करो – भगवान शंकर की उपासना करो तो–डटकर तुलसी पत्र चढ़ाओ। भेद बुद्धि को परित्याग कर के – जब तुम उपासना करोगे – तब तुम्हारा कल्याण होगा। वस्तुतः यह सब भेद माया का डाला हुआ है। वस्तुतः – तुम्हारा स्वरूप जो सनातन ब्रह्म आत्मा है – वह एक का एक है यह सब माया कृत भेद है।यह

सब माया कृत भेद है – माया का डाला हुआ भेद है। यह माया का चमत्कार है – ये सब माया के गुण हैं। तब –
दैवी ह्येषा गुण मयी मम माया दुरत्यया। गी – 7–14
ये श्रुति है।

शिवाय विष्णु रूपाय शिव रूपाय बिष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णु विष्णेश्च हृदयं शिवः।।

स्कन्दोपनिषद् पृ 283

इसका एकश्लोक भी है –

यो हरिः सः शिवः साक्षात्
यः शिवः सः स्वयं हरिः।

द्वै भेदं जो जानात – सजात नरकं प्रति।।
और जो – भगवान हर हैं – वही साक्षात् हरि है।
और जो साक्षात् हरि हैं – वही साक्षात् हर हैं।
हरि और हर में जो भेद मानता है जानता है–
वह सीधा नरक गामी होता है।

दैवी हयेषां गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते।। गी. 7–14
अर्जुन! इसलिए – यह जो मेरी माया है – वह बड़ी अपार है – बड़ी प्रबला है – इसको जो कोई पार करना चाहे – वे मुझ आत्मा को ही – जो प्राप्त कर लेते हैं – वे इस माया से तर जाते हैं – या इस माया को पार कर जाते हैं। देखो – अभी हम पीछे बता चुके हैं कि – शास्त्रकारों ने – माया का नाम "अजा" और भगवान का नाम "अज" रखा है – क्यो? इसलिए कि – यद्यपि यहाँ अनेक मनुष्य बैठे हैं। परन्तु जो मनुष्यतत्व धर्म है – क्या वह भी अनेक है? एक है न? – श्रोता – हां – तो फिर अनेक मनुष्य नहीं हैं – एक ही हैं।

अनेक पुरूष बैठे हैं – मगर जो पुरूषत्व धर्म है – वह तो एक है अनेक स्त्रियाँ बैठी हैं – मगर जो स्त्रीत्व धर्म है – क्या वह भी अनेक है? वह तो एक है। तो इसी तरह से – अज और अजा – मगर जो अजन्मा पना है – अजत्व धर्म है – क्या वह भी दो है? वह तो एक है – तब फिर अज ही अजा है। यह– इसलिए – अज ही अजा है। तभी तो भगवान कहते हैं कि – मुझको ही –

"माम एव ए प्रपद्यन्ते"

यानी – मुझ आत्मा को ही जो प्राप्त कर लेते हैं –
वे इस माया से तर जाते हैं।
क्योंकि – मैं ही तो माया हूँ।
और मुझ आत्मा को जान लेने पर – माया है कहाँ –
वाह भाई वाह–

दैवी ह्येषा गुण मयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते।। गी. 14

रज्जू में सर्प है कि – रज्जू ही सर्प है?
रज्जू ही सर्प है। इसी तरह
भगवान में माया है कि – भगवान ही माया है?
उत्तर – भगवान ही माया है।
इसलिए "माम एव से प्रपद्यन्ते"
मुझ आत्मा को ही जो प्राप्त कर लेते हैं –
वे इस माया से तर जाते हैं।

श्री स्वामी जी – विनय पत्रिका (पद – 89)

मेरो मन हरि जू! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ देउँ सिख बहु विधि, करत सुभाउ निजै।।1।
ज्यों जुबती अनुभवति प्रसव अति दारून दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारी सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै।।2।।

लोलुप भ्रम गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहूँ न मूढ़ लजै।।3।।
हैं हारयों करि जतन बिबिध बिधि अति सै प्रबल अजै।।
तुलसीदास बस होई तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।।4।।

भाग – 4

कहिअ तात से परम विरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।
राम. अरण्य . दो –15 पृ 368

तो परम वैराग्य का क्या स्वरूप है?
तो इस संसार वृक्ष को किस वैराग्य से काटा जाय – न सोपाधिक से काटो न
निरूपाधिक से काटो – इसको परम वैराग्य से काटो (यह संसार वृक्ष– ये दोनो से न कटेगा – संसार वृक्ष परम वैराग्य से कटेगा। इसे परम वैराग्य से काटा जाय। न सोपाधिक से – न निरूपाधिक से – क्योकि ये दोनों अबोधकाल में है – बोध के पश्चात्

कहिअ तात सो परम विरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।
राम . अरण्य दो 15 पृ. 368

तो परम वैराग्य का स्वरूप यह है कि –
यद्यत श्रृणोति कर्णाभ्यां तत्त दात्मेति भावयेत। (श्रुति है)
जो कुछ भी कानो से तुमको शब्द सुनाई पड़ै – तो आत्मा की भावना करो – कि –"मैं हूँ"– जो आंख से रूप देखों तो – भावना करो कि –"मैं हूँ"– जो नाक से सूंघों – तो भावना करो कि "मैं हू" – जो स्पर्श करो – ते भावना करो कि – "मैं हूँ"
दृष्टिं ब्रम्हा मयीं कृत्वा पश्येत ब्रम्हमयं जगत। (श्रुति है)
सारे चराचर को आप सहित वासुदेव, नारायण आत्मा परमात्मा

देखो। इसका नाम परम वैराग्य है। तो अबोध काल में जब वैराग्य जागृत होता है – तो उसमें विषयों के विलास का वैराग्य होता है। और जब आत्मा का बोध हो जाता है – तो उसमें विषयों के अस्तित्व का त्याग होता है। अर्थात् – विषय है ही नहीं। जैसे – यह एक विषय है – समझे! (फल को दिखाकर समझा रहे हैं।) तो अबोध काल में जब वैराग्य जागृत होता है – यह जो विषय है – इसके भोग से घृणा हो जाती है। तो विषय से घृणा हो जाती है – लेकिन जब बोध हो जाता है – तो उसके बाद – सब कुछ वासुदेव है – सब कुछ आत्मा है – यह तो नारायण है – आत्मा है तो फिर जिसको विषय मानता था वह विषय –विषय न रहा सब कुछ आत्मा है नारायण है। वासुदेव है। तो फिर इसके अस्तित्व का त्याग हो गया यहाँ पर।

तो जब तक विषयों के अस्तित्व का त्याग नहीं होता – तब तक उसके गिरने का भय रहता हैं। है ही नहीं – तो – "मैं हूँ" – इसको परम वैराग्य कहते हैं। तो यह जो परम वैराग्य है – यही संसार वृक्ष को काटने के लिए शस्त्र हैं। बोध होने पर ही– विषयों के अस्तित्व का त्याग होता हैं। सोपाधिक और निरूपाधिक वैराग्य से तो – देखने में – भोग से घृणा हो जाती है – परन्तु विषय – विषय रह जाता हैं। और बोध होने से – जिसे विषय मानता था – वे विषय विषय न रहे – नारायण हो गये। बोध होने से – यह विषय – विषय नहीं रहता – ये सब कुछ नारायण हैं। आत्मा है – इस प्रकार की दृष्टि से – उसके अस्तित्व का त्याग होता हैं। जब तक अस्तित्व का त्याग नहीं होता – तब तक गिरने का भय रहता हैं। यही जो परम वैराग्य है – संसार वृक्ष काटने के लिए यही शस्त्र हैं। यह हथियार हर वक्त साथ में रखना चाहिए। जब

नाम रूपाकार वृत्ति बनने लगे तो तुरन्त काट डालो – उसे बनने ही न दो – जैसे – जब भजन में बैठते हो न – चाहे निराधार बैठो – चाहे साधार बैठो। चाहे निरालम्ब ध्यान हो – चाहे सालम्ब ध्यान हो – जैसी तुम्हारी साधना हो – कुछ भी भावना रहे – परन्तु जब बैठो – कोई भी नाम रूप आए – तो हथियार तो रहेगा ही – तो तुम "मैं हूँ" की भावना करो – जहाँ तुमने – "मँ हूँ" – की भावना किया – तो जानों उस वृक्ष को काट दिया। जहाँ तुमने अपने आप की भावना किया – तो जानों – उस वृक्ष को काट दिया – क्योंकि नाम रूप ही तो संसार हैं। जो भी नाम रूप तुम्हारे सामने आए बस उसको काट दो –"मैं हूँ"। यह–

असङ्.ग शस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा।

और थोड़े समयकी बात है – थोड़े समय तक इस प्रकार अभ्यास करते करते – फिर तुम्हारी स्थिति ऐसी हो जाऐगी कि– विक्षेप भी उठने दे और भजन भी कर – तुमको पता भी न रहेगा।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मा मनुस्मर युध्यच।।गी–8–7

सर्व काल में मेरा स्मरण भी कर और युद्ध भी कर।

स्मरण भी कर – और युद्ध भी चलाने दे –

स्मरण भी कर – विक्षेप भी उठने दे – फिर ये स्थिति तुम्हारी हो जायेगीं याने – विक्षेप भी उठने दे – और स्मरण भी कर–

तुलसी दास कह चिद् – विलास जग।
बूझत बूझत बूझै।

(विनय पत्रिका पद 124 पृ. 203)

मन के शुद्ध हो जाने पर – यह संसार चिद् विलास – चैतन्य चमत्कार – दिखता है। इस पद में यहाँ तीन बार बूझत बूझत

बूझै क्यों कहा है। मन के शुद्ध हो जाने पर यह संसार – विद् विलास – चैतन्य चमत्कार लगता है। तो यहाँ पर तीन बार – बूझत – बूझत, बूझत, बूझै क्यों कहा – इसका क्या तात्पर्य है। कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।।4।।

गो. तुलसीदास विनय पत्रिका पद नं. 117 पृ.185

बूझत – दूसरा बूझत और तीसरा बूझै।
ये तीनों भ्रम है।
मानस कार अपने विनय पत्रिका में कहते हैं कि – ये तीनों भ्रम है। जहाँ तक त्रिपुटी है – बूझत, बूझत, बूझै है – वहाँ तक भ्रम है। यद्यपि यह नारायण स्वरूप है – जैसे – रज्जू मे सर्प– रज्जू से भिन्न कुछ भी नहीं है। ऐसे "मैं आत्मा ही हूँ" – मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है – यद्यपि यह नारायण स्वरूप है – परन्तु जीव उसे अनादि काल से – यह संसार मानता चला आ रहा है। यद्यपि "मैं ही हूँ" – मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है – फिर भी अनादि काल से – यह संसार मानता चला आ रहा है। जबकि –"मैं आत्मा"– से भिन्न कुछ भी नहीं है। परन्तु अनादि काल से यह अध्यास है – "संसार का भावना का" संसार देखने और मानने का अभ्यास है – इसलिए – इस संसार को परम वैराग्य रूपी शस्त्र से काटना चाहिए।

ततः पदं तत्परिमार्गि तव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरूषे प्रपद्ये।

यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पूराणी।। गी. 15–4

असंग शस्त्र से – माने परम वैराग्य रूपी शस्त्र से इसको काटना चाहिये। अब इसे – संसार वृक्ष काटने के लिए ऐसा

शस्त्र कहो या संसार वृक्ष को काटने के लिए – यही शस्त्र है कहो। अर्थात् अपने स्वरूप से भिन्न कुछ देखो ही नहीं। संसार सागर से पार उतरने के लिए असंग शस्त्र ही या परम् वैराग्य, कहो यही साधन है। अभी अनुभव करो – यहीं पण्डाल के नीचे बैठे – बैठे अनुभव कर लो। क्योंकि – यहाँ तो सबको अनुभव कराई जा रही है। यदि स्वभावतः (डण्डा दिखाकर समझा रहे हैं) – यह डण्डा तुम देख रहे हो– तुम्हारी डण्डा कार वृत्ति नहीं बनती – तो यही ब्रम्हा कार स्वरूप की वृत्ति है। और यदि डण्डा कार वृत्ति बनती है – तो –"मैं हूँ"– इस शस्त्र से काट दो। पकड़ में आई न यह चीज।

यदि डण्डा कार वृत्ति बनती है – तो "मैं हूँ" इस शस्त्र से काट दो। जैसे – किसी चीज को तुम देख रहे हो – और यह दृश्य तुम्हारे सामने आता है। परन्तु इस रूप में तुम्हारे अन्तःकरण में वृत्ति नहीं बनती – विषय सूक्ष्म है – पकड़ना इसे – इन शब्दों को – हमारे शब्दों को सुन रहे हो न – बच्चे तुम्हारे सामने बैठे हैं – ये आते हैं जाते हैं– तो उस समय यह बालक – इनमें से कौन आता है – कौन जाता है – इसके तरफ तुम्हारी वृत्ति नहीं जाती। कथा सुनने की ही वृत्ति बनी रहती है। तो ये दृश्यादिक पदार्थ – जैसे ये बालक, तुम्हारे सामने से आ जा रहे हैं – तो उस समय यह सब बालक–"मैं"– रहता है – विषय सूक्ष्म है। क्योंकि आज आखिरी प्रवचन है न – इसलिए हम समझा रहे हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि नहीं – कोई आया और तुम्हारे सामने खड़ा है परन्तु – तुम इतने तल्लीन हो कि –उधर ध्यान ही नहीं गया। तो तुम पूछते हो कि – कब आए – तो सामने वाला कहता है कि घंटे से तो मैं तुम्हारे सामने ही बैठा हूँ – और मैं देखा नहीं – तुम्हारे व्यवहार में ही वेदान्त का स्वरूप बता रहे है। कौन

आया – कौन चला गया – कौन सामने बैठा है – और कौन खड़ा है – क्या है? इसके तरफ वृत्ति नहीं जाती – तो उस समय – ये सब –"मैं आत्मा" हैं यह सब –"मैं आत्मा"– ही है। और कदाचित् बालका कार वृत्ति बने तो – असंगशस्त्रेण – "मैं हूँ" इससे काट दो– यह अमोघशस्त्र दिया जा रहा है। नाम रूपाकार वृत्ति बनी कि – संसार खड़ा हो गया – तो उस समय संसार वृक्ष को –"मैं हूँ"– इससे काट दो। बालका कार वृत्ति बनी नहीं – कि संसार खड़ा हेा जाता है।"मैं हूँ" – बस– फिर ज्यों की त्यों स्थिति है। क्योंकि –

अश्वत्थ मेनं सुविरूढ़ मूल –
मसड्.ग शस्त्रेण दृढ़े न छित्वा। गीता. 15–3

अभी जो बता रहे हैं – पकड़ में आई न – यह प्रक्रिया– बड़ी विलक्षण है। असड्.ग शस्त्रेण – परम वैराग्य – "मैं" करके इसको काटना चाहिए।

अभी इसी मुद्रा मं जैसे बैठे हेा – कोई संकल्प विकल्प नहीं – कोई भावना नहीं – कोई विचार नहीं – अब जब कोई विचार उठे – तेा "मैं हूँ" – इस असड्.ग शस्त्र से काट दिया। वृत्ति तो भीतर है – बाहर कुछ नहीं है भला। भैया! दुनियाँ के लोग– इस प्रपंच से घृणा मानकर के भागने की कोशिश करते हैं – कि यहाँ बड़ा प्रपंच है – यहाँ बड़ा हल्ला हो रहा है – चलो एकान्त में बैठें – कहते हैं। यह नहीं जानते कि – ये जो हल्ला हो रहा है – वह भीतर का हल्ला है–बाहर नहीं है– यह तुम्हारे स्वरूप से बाहर नहीं है – ये भीतर है। ये जो कुछ भी तुम देख रहे हो – भीतर हे – यह बाहर नहीं है ये सब। तो भीतर का विक्षेप नष्ट करना चाहिए।भीतर काविक्षेप नष्ट हो गया – तेा तुम्हारे सामने बैंड बाजा भी बजता रहे –पर

तुम्हारी वृत्ति – कहीं नहीं जायेगी। चाहे तुम हिमालय की गुफा में चले जावो – वहाँ भी तुमको हल्ला सुनाई देगा। हिमालय की गुफा में रहो – चाहे कहीं रहो। कहाँ जावोगे। हाँ – हल्ला तो तुम्होर हृदय में हो रहा है – बाहर नहीं है। जो कुछ देख रहे हो – वह सब भीतर का दृश्य है। यह तुम्हारे स्वरूप से बाहर नहीं है। सब कुछ भीतर की ही चीज है। चाहे पाताल लोक में चले जावो – तो वहाँ भी तुमको हल्ला सुनाई पड़ेगा – तो जो चीज़ असली है – वह हम तुमको दे रहे हैं – सुना रहे हैं। विक्षेप भीतर है – बाहर नहीं है। भीतर का विक्षेप का नाश हो गया तो – बैण्ड बाजा भी बजता रहे – चिंता नहीं है – तो भीतर के विक्षेप का नाश करना चाहिए। जो कुछ तुम देख रहे हो – तुम्हारे अंदर है। भैया!

यह अमोघ शस्त्र – आज मैं तुम लोगों को दे रहा हूँ। यह हथियार है – आज मैं तुम लोगों को दे रहा हूँ – पर्वत की कन्दरा में भी – तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी – तुम्हें असली बात बता रहे हैं। तो श्री कृष्ण भगवान कह रहे हैं –

"असङ्ग शस्त्रेण दृढ़े न छित्वा"

असङ्ग – वैराग्य – परम वैराग्य का रूवरूप क्या है।

'आत्मै ए वेदं सर्वम्'

वेदान्त तुम्हें – और क्या सिखाता है – सुनों कान खोल कर। वेदान्त की यही शिक्षा है कि –

यदि तुम राम के उपासक हो तो – आप सहित सब राम है।
यदि तुम कृष्ण के उपासक हो तो – आप सहित सब कृष्ण है।
यदि तुम विष्णु के उपासक हो तो – आप सहित सब विष्णु है।
यदि तुम शिव के उपासक हो तो – आप सहित सब शिव है।
यदि तुम शक्ति के उपासक हो तो – आप सहित सब शक्ति है।
और यदि भूत प्रेत के उपासक हो तो–आप सहित सब भूतप्रेतहैं।

यही वेदान्त का स्वरूप है – और वेदान्त क्या सिखाता है तुमको।

"एक मेवा द्वितीय ब्रम्ह नेह नानास्ति किंचन।"

इस प्रकार की जो तुम्हारी अभेद उपासना है – इस उपासना की फलश्रुति क्या है? हम फल श्रुति भी बताते हैं आगे चलकर तुम्हें यही फल मिलेगा – यार तुम्हारी ऐसी स्थिति हो जायेगी

एतन्मतं समातिष्ठ पर मेण समाधिना।
भवान् कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित (36)

श्री मद्भागवत – 2 – 9 – 36 – पृ. 75

यदि विक्षेप आता है – तो विक्षेपाकार वृत्ति तुम्हारी नहीं बनेगी। शान्तिः ––। शान्ति है – तो शान्ति ही रहेगी। एक रस स्थिति हो जावेगी – उस तरफ तुम्हारा ध्यान ही नहीं जावेगा। अरे – निकल जावेगा।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। गी. 8–7

जब तुम ध्यान में बैठते हो – और ध्यान में जब विक्षेप उठता है – तो ग्लानि होती है – तो यह कमजोरी है – इसी कमजोरी को निकालना है।

"असङ्ग शस्त्रेण दृढ़े न छित्वा"

परम् वैराग्य रूपी शस्त्र से काटो – तब यह कमजोरी निकलती है। नाम रूपात्मक प्रपंच को काटो – परम वैराग्य रूपी शस्त्र से – तब यह कमजोरी निकलती है। जब काटते–काटते संसार निर्मूल हो जावेगा – तो विक्षेप रहेगा ही नहीं। तब फिर भान भी न होगा कि – यह विक्षेप है – और यह विक्षेप नहीं है। अरे! निकल जावेगा। जब तक ग्लानि हो रही है – तब तक कमजोरी है – इसी को निकालना है। अरे! विक्षेप तो है ही नहीं –जब कि –"मैं हूँ"– अरे!इसी को निकालना है –इसके

निकल जाने पर प्रपंच न रहेगा। तब तुम्हें भान भी न होगा कि- प्रपंच भी कुछ है- जबकि - "मैं ही हूँ"।

"असङ्ग शस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा"

यह कमजोरी निकल जाने पर - फिर तुम्हें ग्लानि नहीं होगी। तब तुम्हें भान भी न होगा कि - प्रपंच भी कुछ है। वेदान्त क्या करता है - लोग वेदान्त को हौवा मान बैठे हैं।

1. वेदान्त हमें अमर बनना सिखाता है - मरना नहीं - वह मृत्यु को मार डालता है।
2. वेदान्त क्या करता है- वेदान्त हृदय में उत्साह और उल्लास बढ़ाता है - और सतकर्म में प्रवृत्त करता है। वह आलस्य विषाद और बुरे कर्मो की प्रवृत्ति को नष्ट कर डालता है।
3. वेदान्त क्या करता है -
   वेदान्त विश्व के सब प्राणियों में एक अमर आत्मा के दर्शन करा कर - सबसे प्रेम कराता है - और घृणा, आलस्य, विषाद, द्वेष, बैर और पराये पन को दूर कर देता है।
4. वेदान्त क्या करता है-
   वेदान्त समस्त संसार को सत, चित और आनन्द रूप बनाकर दिखा देता है - वह जड़ता को सर्वथा नष्ट कर डालता है।
5. वेदान्त क्या करता है-
   वेदान्त - कड़वी और दुःख भरी दुनिया को परम मधुर अमृत रस से पूर्ण बना देता है - वह जड़ता, कटुता और कष्ट की जड़ ही काट डालता है।
6. वेदान्त क्या करता है-
   वेदान्त - जीवन को संयमी, संतोषी, निरहंकारी, और कर्त्तव्यशील बनाता है। वह विषय वासना, अतृप्ति, अहंकार और अकर्मण्यता को आमूल मिटा देता हैं।
7. वेदान्त क्या करता है-

वेदान्त कर्तव्यशील बनाता है – हमारे जीवन को आत्मा या परमात्मा के परायण बना देता है – वह हमारी – काम, क्रोध और लोभ परायणता को तथा अज्ञान के अंधकार को समूल मिटा देता है।

8. वेदान्त क्या करता है–

वेदान्त – ज्ञान की अप्रतिम अपूर्व ज्योति जलाकर सर्वत्र निर्मूल – एक रस अनन्त प्रकाश फैला देता है। वह अज्ञान के अंधकार को सदा के लिए मिटा देता है।

9. वेदान्त क्या करता है–

वेदान्त ऊँच नीच के लौकिक व्यवहार के रहते हुए भी आन्तरिक ऊँच नीच के भाव को सर्वथा मिटा देता है। वह उपाधि के कल्पित भ्रम भेद के भाव को सर्वथा मिटा देता है। वह उपाधि के कल्पित भ्रम भेद को हटाकर – हमें सर्वत्र नित्य अभेद स्वरूप सम ब्रम्हा के दर्शन करा देता है। आन्तरिक भावना को दृढ़ कर भेदभाव को मिटा देता है। खरबूजे को संस्कृत में "दशांगुलीय" कहते हैं। इसके ऊपर दस निसान बने रहते हैं। बाहर से अनेक दिखने पर भी भीतर से एक रहता है। परन्तु इसके विपरीत "सन्तरे" – बाहर से एक और भीतर से अनेक रहता है। तुम्हारे शरीर के व्यवहार अलग हमारे शरीर के व्यवहार अलग ये काल्पनिक भेदभाव तो रहेगा ही। खरबूजे की तरह से हमारा यह आध्यात्मिक ज्ञान है – बाहर से अनेक परन्तु भीतर से एक। काल्पनिक जगत का व्यवहार तो रहेगा ही। वेदान्त सर्वत्र एक रस सम ब्रम्हा का दर्शन करा देता है! यह काल्पनिक जगत का भेदभाव तो रहेगा ही।

10. वेदान्त क्या करता है–

वेदान्त मोह के सब पर्दों को फाड़कर –जीव की अपूर्ण साध को पूर्ण करता है – उसे परमात्मा बनाता है, फिर उसके लिए

कुछ भी करना शेष नहीं रहता। ये वेदान्त के दस सूत्र हैं। इसलिए –
जी हां –

न रूप मस्येह तथोप लभ्यते, नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थ मेनं सुविरूद्ध मूल, मसड्.ग शस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा।। गी. 15–3

और यह अभेद कवच है – जो भगवान दे रहे हैं – बता रहे हैं– यह अभेद कवच है। इस अभेद कवच को जिसने धारण किया– संसार में वह दिग्विजयी है। और उस धारण करने वाले का संसार में कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। "एटम बम" भी कुछ काम नहीं कर सकता। हाइड्रोजन – नाइट्रोजन भी – नहीं काम कर सकते हैं। संसार में वह दिग्विजयी है – किसी की शक्ति नहीं कि – कोई उसका अहित कर सके। "मुक्ता" को तो जीवन भर का अनुभव है। इस जिंदगी का काफी हिस्सा जंगल में बीता है। जब जंगल में जाते हैं तो – बड़े–बड़े अजगर, व्याघ्रदिक – हिमालयन सिंहादिक, बड़े–बड़े रीछ मिलते हैं – उनके बीच में मैं रहता हूँ परन्तु मैं इतना निर्भय रहता हूँ– कि वे कोई घातक नहीं होते हैं। क्योंकि – "मैं ही तो हूँ" – उन रूपों में।

गीता के प्रेमियों – आज इसी की जरूरत है भैया! आज इसी ज्ञान की जरूरत है आज इसी अभेद कवच कोधारण करने की जरूरत है। समाज को, राष्ट्र को और विश्व को इसके बिना शांति नहीं मिलती – इसी कवच की आवश्यकता है जबकि आज आपत्ति के घनघोर्रे घटा मंडरा रहे हैं आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को खा जाने को तैयार हैं। अपनी–अपनी तैयारी में सब लगे हुए हैं। आज संसार की यात्रा बड़े भयानक मार्ग से हो रही है। ऐसे समय में रक्षा का क्या उपाय है। यही

अभेद कवच – इसी अभेद कवच को धारण करो यही रक्षा का उपाय है। जो भगवान बता रहे हैं – अभेद कवच धारण करो–

बेगाना अगर नज़र पड़े, तो आशना को देख।
दुश्मन भी आए सामने, तो भी खुदा को देख।।

इससे बढ़कर रक्षा का कोई उपाय नहीं है।

न रूप मस्येह तथोप लभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूद मूल,
मसङ्गशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा ।।गीता।। 15–3
ततः पदं तत्परिमार्गि तव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः। गी. 15–4

जिसको प्राप्त करके – जहाँ पर जाकर – फिर पुनरावृत्ति नहीं होती – पुनर्जन्म नहीं होता।

तमेव चाद्यं पुरूषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी। गीता 15–4

उस आद्य पुरूष की मैं शरण में हूँ – इसे प्राप्त करके फिर पुनः पुनरावृत्ति नहीं होती। जहाँ पर जाकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता – उस आद्य पुरूष की मैं शरण में हूँ

तमेव चाद्यं पुरूषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पूराणी।। गीता 15–4

इसे प्राप्त करके पुनरावृत्ति नहीं होती।

तमेव चाद्यं पुरूषं प्रपद्ये –

उस आद्य पुरूष की मैं शरण में हूँ।

निर्मान मोह जित सङ्गः दोषा –
अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः
द्वन्दैर्विमुक्ताः सुख दुःख सञ्ज्ञै–

गच्छन्त्य मूढ़ा पद मव्ययं तत्।। गी. 15–5

और नहीं तो – वेदान्त के कथन पर विश्वास न हो तो – परीक्षा करके देखो। ध्यान दो–

कहीं जा रहे हो – रास्ते में काई खूंखार कुत्ता तुमको यदि मिल जाता है – और तुम्हारे तरफ भूंकते हुए दौड़ता है – उस समय तुम्हारा क्या कर्तव्य है – तब क्या भावना करो – "मैं ही तो हूँ"। जहाँ अपने आप को तुमने – उसको देखा – उसका मुंह बंद हो जावेगा – भूंकना बंद हो जावेगा – वह आकर तुम्हारा पैर चाटने लगेगा। उसका स्वभाव ही बदल जावेगा। हम तो रात दिन कर रहे हैं – तुम भी कर के देखो – यदि विश्वास न हो तो।

श्री स्वामी राम तीर्थ जब अमेरिका से आये – हिमालय में। अपने कुछ सत संगियों के साथ निकल पड़े। तो देखते क्या हैं – कि बड़ी दूर पर एक हिमालयन सिंह बैठा है। स्वामी जी देखते हैं उसको – और सत संगी भी देखते हैं। तो स्वामी जी सतसंगियों को छोड़ कर – वहाँ से मस्तानी चाल से – सिंह की ओर चल पड़े – सत संगियों ने मना भी किया – रोक भी रहे हैं पर क्यों मानें – राम जो ठहरे – मस्तानी चाल में चल पड़े – और जब सिंह के पास पहुँचे – तो कुछ दूर से कह रहे हैं – आज तो राम से मिलने राम आ रहा है – आज तो राम – राम का समागम होगा।

क्यों भैया! तुम तो राम हो ना – कौन कहता है कि– तुम सिंह हो – तुम तो राम हो। ऐसा कहते हुए उसके पास बैठ जाते हैं। उसके गले में हाथ डाल देते हैं – पुचकारते हैं– उसके ऊपर हाथ फेरते हैं – वह स्वामी जी के पीठ चाटने लगता है – और स्वामी जी उसके ऊपर बैठ जाते हैं

वह भी स्वामी जी का हाथ चाटने लगता है – प्यार करता है। सत संगी लोग सब दूर से देख रहे हैं। क्योंकि न तो कोई सिंह है, न व्याघ्र, सिंह है तो मैं हूँ – साँप है तो मैं हूँ– बिच्छू है तो मैं हूँ। सारा संसार – जो कुछ भी है – सब "मैं" हूँ।

संसार का कोई वजूद ही नहीं है – तो जब संसार को नारायण देखोगे – भगवान देखोगे। मान लो तुम्हारा कोई शत्रु है – तुमको मार डालने की फिराक में लगा हुआ है – और यदि तुमको पता लगा – तो तुम अपने हृदय से उसके प्रति शत्रु भाव निकाल दो – उसको नारायण देखो – तो उसके हृदय से शत्रु भाव निकल जावेगा। इस पर विश्वास करके इसका प्रयोग भी करो। जैसे – और मंत्रों तंत्रो पर विश्वास करते हो – वैसे ही इस पर भी तो विश्वास करो। इसकी भी परीक्षा करो – कि महान पुरूषों का कथन – अनुभव – सत्य है कि असत्य।

निर्मान मोहा जित सङ्.गदोषा
अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःख सञ्ज्ञै –

र्गच्छन्त्य मूढ़ाः पद मव्ययं तत्।। गी. 15–5

अर्थात् – जिनके हृदय से मोह आदिक विकार निकल गये हैं– विषयों का विकार – जिनके हृदय से निकल गये है। सतसंग से जिनकी कामनाएं निवृत्त हो गई हैं – जिनकी वृत्ति विषयों में नहीं हैं। मान अपमान, सुख दुःख, भूख प्यास, ठंडी गरमी इसके सहन करने का नाम तितिक्षा है। देखो – किसी तरह – गरीब लोग भी – ठंडी गरमी सहन कर लेते हैं – एक धोती से विचारे रात भर ठंड काट लेते हैं। परन्तु मान–अपमान सहन करना – हर एक के हृदय का काम नहीं है – मान अपमान सहना करना यह महान् तितिक्षा है।

यह सिर्फ – संतों में ही हुआ करती हू – संसारियों में नहीं।
तितिक्षा – संतों में ही होती है – संसारियों में नहीं।।
जी हाँ
सब जख्म की दवा तो अस्पताल में हे – परन्तु – अपमान की दवा तो – अस्पताल में भी नहीं है। इसकी औषधि ज्ञान है। अपमान की दवा तो "ज्ञान" ही है। इसकी औषधि ज्ञान है। यदि कोई गाली देता है तो – "मैं ही तो हूँ"।
गाली देने वाला भी – "मैं हूँ"।

"मैं आत्मा गुणाश्रया"

और गाली भी – "मैं हूँ"। और न विश्वास हो तो – गाली देकर देखो। इसका स्वामी जी! क्या प्रमाण है –
तो स्वामी जी यही प्रमाण दे रहे हैं कि –गाली देकर देख लो–

"मैं आत्मा गुणाश्रया"

यह सिवाय बोध का फल है – यह तपस्या का फल नहीं है – यह जप तप का फल नहीं है – जब हम तुमको अपने से भिन्न देखेंगे – तभी यह बात होगी। श्री परम पूज्य स्वामी जी– श्री उग्रानंद जी महाराज के विषय की एक घटना बताते हैं। वैराग्य वान – वीत राग पुरूषों का स्मरण – उनके चरित्र का स्मरण – यह भी एक कल्याण का हेतु होता है। जब कभी भी संतों के विषय में बात याद आती है – तो स्वामी उग्रानंद जी महाराज के विषय में कहते हैं।
वैराग्यवान – वीत राम महान् पुरूषों का स्मरण – उनके चरित्र का स्मरण – यह भी एक कल्याण का हेतु होता है। वीत राग महात्माओं का दरबार – स्मरण कल्याण का हेतु होता है। यह कल्प वास के आस–पास की बात है। किसी समय – किसी जमींदार के बैल खोल कर चोर ले गए। अंधेरी रात थी –

और स्वामी जी उस अंधेरी रात में – एक वृक्ष के नीचे – समाधी लगाये बैठे थे। तो जमीदार के नौकर – बैल खोजते–खोजते उधर से ही निकले। तो स्वामी जी को बैठे देख कर – यह समझे कि – इधर कहीं बैल को रखकर – भाग नहीं सका – तो वृक्ष के नीचे बैठा है। तो फिर लाठी चल पड़ी– स्वामी जी को खूब मारने लगे। स्वामी जी – सी – भी नहीं किए। सिर्फ सिर बचाने के लिए मिट्टी के खप्पर – जो भोजन के लिए रखते थे – और कुछ गोदड़ी यही रखते थे। मिट्टी का खप्पर, कफन की लंगोटी और गोदड़ी – बस इतना ही रखते थे – उसी से सिर ढाँक लिए। जब काफी मार चुके– तो नौकरो ने कहा – यह मारते मारते मर जावेगा – चलो थाना ले चलें। श्री स्वामी जी को पकड़ कर पास के थाना में ले आए। वहाँ से 4–5 मील में थाना था। तब तक सुबह हो गया। थानेदार – स्वामी जी का शिष्य था। जी हाँ –

जब उसने यह दशा स्वामी जी का देखा – तो रहा न गया – वह आग बबूला हो गया। उसने अपने हवलदार से कहा इन सबको पकड़ लो – सब को बाँध कर थाने में डाल दो। स्वामी जी का शरीर जगह–जगह से फट गया था। सुनों ध्यान देकर। स्वामी जी थानेदार से कहे कि – प्यारे! यदि तू मेरा पक्का शिष्य है – तो इन लोगों को कुछ मत कह – इन लोगों ने जो हमको मारा है। यदि ये लोग – महात्मा समझ करके मारे होते – तब तो उनको सजा देनी चाहिए। परन्तु ये लोग तो मुझे चोर समझ कर मारे हैं। ये चोर को मारे हैं – महात्मा को नहीं। इनका क्या दोष। स्वामी जी के कहने से– थानेदार को 10–12 सेर मिठाई पेड़ा मंगाना पड़ा। ये लोग रात्रि भर परिश्रम किए हैं – तो फिर मिठाई लाई गई। उन्होंने अपने हाथ से – परस परस कर उनको खिलाये – और ठण्डा

पानी पिलाये। बैसाख का महीना था, और कहे भैया! अब तुम लोग जावो – और अपने बैल को खोजो।

श्री स्वामी जी के घाव को आराम करने में – महीनों दवा लगी – परनतु स्वामी जी ने – उनको कुछ नहीं कहा – और उनका अनहित नहीं चाहा – इसको तितिक्षा कहते हैं। केवल वेष रख लेना साधु पना नहीं है।सिर मुड़ा लेना –साधु बन जाना – साधु पना नहीं है – साधु बनना बड़ा मुश्किल है। ठंडी गरमी, सुख – दुःख, मान–अपमान सहन करना बड़ा भारी तितिक्षा है। केवल घर द्वार छोड़ देना साधु पना नहीं है। जिस तरह से हजारों टांके लगने से एक जेवर तैयार होता है। उसी तरह से – हजारों आपत्तियों को सहन करने से – तब कहीं एक साधु बनता है। हृदय विचलित नहीं होता – संत बनना बड़ा मुश्किल है। कहने का मतलब ये है कि – स्वामी जी के पास – असड्.ग शस्त्र था तब तो बच गये – तभी तो हृदय विचलित नहीं हुआ। तो संत बनना बड़ा मुश्किल है।

निर्मान मोहा जित संग दोषा
अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः।
द्वन्दैर्विमुक्ता सुख दुःख सज्ञै
र्गच्छन्त्यमूढ़ाः पद भव्ययं तत्।। गीता 15–5

सुख दुःख – ठण्डी गरमी, भूख प्यास इससे विमुक्त निरामय पद है। ~~द्वन्दैर्विमुक्ताः~~
निरामयः पदं गच्छन्ति – सुख दुःख से विमुक्त।
अविमूढ़ाः विद्वानतः – महात्मनः – अव्ययं पदं गच्छन्ति – वह जो परिपूर्ण है – आत्मपद है – उसको प्राप्त कर लेते हैं।

आये कछु हर्ष नहीं, जाये कछु शोक नहीं।
बड़ो निर्द्वन्द हूँ, समझने की बात है।।
देह गेह घेरे नहीं, लक्ष्मी के चेरे नहीं।
सुत बनितादि मेरे नहीं, हरि सो कछु बसात है।।
लोक की रीति है, मानने की प्रीति है।
हार है, न जीत है, जाति है न पांति है।।
निर्भय यही ज्ञान है, सत्य भगवान है।
और कहा ज्ञानी के सींग जम जात है।।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।
अस्याः सक्ड.ल्प मात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते।। 33
योगचूड़ामण्युपनिषद पृ. 260

भाग – 5

हंसो पाख्यान

त्वं तु सर्व परित्यज्य स्नेहं स्वजन बन्धुषु।
मय्या वेश्य मनः सम्यक् समदृग विचरस्वगाम्।।
यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्या श्रवणादि भिः।
नश्वरं गृह्य माणं च विच्दि माया मनोमयम्।।
श्रीमद भागवत 11–7 पृ. 603
भगवान उद्धव से कहते हें – भैया!

"यदिदं मनसा वाचा – चक्षुर्भ्या श्रवणादिभिः।
मन, वाणी, नेत्र, श्रवणेन्द्रिय एवं अन्य इन्द्रियों द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है – वह सब नश्वर है। विषय ग्राह्य है – और इन्द्रिय ग्राहक है। विषय पांच हे – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। मन जहाँ तक चिंतन करै – वाणी जहाँ तक कथन करै – नेत्र जहाँ तक देखे – कान जहाँ तक सुनें – इत्यादि

सब के सब नश्वर हैं। मनोमय यानी मन रचित हैं

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्य माणं च विद्धि माया मनोमयम्।।

श्री मद भागवत 11–7 पृ. 603

भगवान यह उपदेश उद्धव को दे रहे हैं – यह उपदेश ऐसा ही है – माने घर का बूढ़ा अन्तिम समय में – अपने बच्चों को बुलाकर आख़िरी उपदेश दें। भगवान का लीला प्रणय काल है। तो वृद्ध पिता – अपने बच्चों को बुलाकर – उन्हें जिस प्रकार उपदेश करता है – उसी प्रकार उद्धव – जो कि भगवान के परम प्रिय सखा हैं – मित्र हैं – और उपदेश के पूर्ण अधिकारी हैं। आत्म जिज्ञासु हैं – तो भगवान – उद्धव का हाथ पकड़ कर अपने पास बिठाकर – और उपदेश करते हैं।

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्य माणं च विद्धि माया मनोमयम्।।

श्री मद भाग. 11–7 पृ. 603

अब यहाँ पर उद्धव का भगवान से प्रश्न होता है – भगवान! किसी समय आप सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमारों को जो– हंस रूप धारण करके – तत्व का उपदेश दिये है। उस रूप और उस तत्व ज्ञान का मुझे उपदेश दीजिए – वह प्रसंग मुझे समझाइए। उसे जानने की मेरी प्रबल इच्छा है।

<u>उद्धव उवाच</u>

यदात्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव।
योग मादिष्ट वाने तद् रूप मिच्छापि वेदितुम।।

श्रीमद भाग. 11–13–16 पृ. 614

श्री भगवानु वाच

पुत्रा हिरण्य गर्भस्य मानसाः सनकादयः।

प प्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यै कान्ति कीं गतिम्।।

श्री मद् भाग. 11–13–16 पृ. 614

हे उद्धव! हिरण्य गर्भ जो भगवान ब्रम्हा जी हैं – उनके मानसिक पुत्र – सनक, सनन्दन, सनातन, सनत कुमारो ने – किसी समय अपने पिताजी के पास जाकर – सूक्ष्म जो योग की अन्तिम गति है। उसे पूछा। अर्थात् – आत्मानुभूति क्या है – और उसे कैसे प्राप्त करना चाहिए? इस पर भगवान कहते हैं–

गुणेष्वा विशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो।
कथ मन्योन्य संत्यागो मुमुक्षो रति तितीर्षोः।। 2

श्री मद् भाग. 11–13–17 पृ. 615

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो।

इन्द्रियों के जो विषय हैं – उसे गुण भी कहते हैं – हे प्रभो! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध – इन पांचों विषयों का चित्त में प्रवेश होता है – अथवा – चित्त इन विषयों में प्रवेश करता है? और मोक्ष की ईच्छा रखने वाला – मुमुक्षु – चित्त और विषय – इन दोनों को अलग – अलग कैसे करे?

यह हंसो पाख्यान है का मौलिक प्रश्न है।

श्री भागवानु वाच

एवं पृष्टो महादेवः स्वयं भूर्भूत भावनः।
ध्यायमानः प्रश्न बीजं नाभ्य पद्यत कर्म धीः।।

श्री मद भाग. 11–13–18 पृ. 615

सनकादिकों के इस प्रकार पूछने पर स्वयंभू जो भगवान ब्रम्हा जी हैं उन्होंने प्रश्न बीज – यानी प्रश्नोत्तर देने के लिए चेष्टा किया ध्यान किया, कोशिश की परन्तु – प्रश्न जटिल होने के कारण – कर्म जाल में फंसी हुई बुद्धि होने के कारण – "नाभ्य पद्यत कर्म धीः" उत्तर देने में समर्थ नहीं हुए। कर्म जाल

में फंसी हुई बुद्धि होने के कारण – ब्रम्हा जी आत्म परक प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। क्योंकि प्रश्न और उत्तर तो बुद्धि से ही दिया जाता है। बुद्धि की स्थूलता के कारण जब प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके तो ब्रम्हा जी का हृदय विक्षुब्ध हो गया – और सनत्कुमारों को अभिमान आ गया – कि मैंने इतना जटिल प्रश्न किया कि – पिता जी उत्तर न दे सके।

इससे यह सिद्ध होता है कि – कर्मकाण्डी की बुद्धि आत्म तत्व का विचार करने में समर्थ नहीं होती। क्योंकि कर्मकाण्डी देहात्मवादी होता है – वह साढ़े तीन हाथ के शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर कर्म करता है। उसकी बुद्धि स्थूल होती है। क्योंकि यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि जो जैसा अपने को मानता है – वैसी ही उसकी बुद्धि उसके संकल्प एवं उसके कार्य भी होते हैं। इसलिए जितने भी कर्मकाण्डी हैं – सब अध्यात्म से दूर भागते हैं। उन्हें जूड़ी आ जाती है – भागते हैं। जब पितामह ब्रम्हा सृष्टि करता की यह दशा है – तो फिर संसारी कर्मकाण्डियों की तो बात ही क्या है। इसी प्रकार का प्रश्न – जिज्ञासु राजा प्राचीनबर्हि ने भगवान नारद् से किया था। उस दिन भी कहा गया था कि – कर्मकाण्डी देहात्मवादी होता है उपासक जीव वादी और ज्ञानी ब्रम्हवादी।

ओम शिव–

अध्यात्म में ये तीनों वाद छूट जाते हैं। न कर्म, न उपासना, न ज्ञान कुछ नहीं रहता। ये तीनो बिमारियाँ याने अध्याय साफ हो जाते हैं। भैया! यह बड़ा आरोग्य देश है।

शोक, मोह, भय, हरष, दिवस, निसि, देश, काल, तहँ नाहीं।

विनय पत्रिका पद – 160

यही आत्म देश का परिचय है – यह गोस्वामी तुलसीदास जी की विनय पत्रिका है।

शोक, मोह, भय, हरव, दिवस, निसि, देशकाल तह. नाहीं।
तुलसिदास असदसाहीन, संशय निर्मूल न जाहीं।।
रघुपति भगति करत कठिनाई।

हाँ – ऐसा सुन्दर देश है – कि कोई वाद नहीं है। न कोई वादी है – न कोई प्रतिवादी है। वकीलों को देख करके याद आ गया भाई! यह विकल्प उठा – ऐसा सुन्दर देश है। कर्म काण्डी अपने को साढ़े तीन हाथ का देह मानता है। देह न मानेगा तो कर्म किससे करेगा – कैसे करेगा? इसी बुद्धि के कारण तो ब्रम्हा जी चक्कर में पड़ गये उनका मन रिवन्न;हो गया – और इधर सनकादिकों को अभिमान हो गया। अब बताइये, ऋग, यजु, साम, अथर्व – ये चारों वेद भगवान ब्रम्हा जी के मुख से निकले हैं। परन्तु कर्मासक्त होने के कारण – ब्रम्हा जी – महाराज विक्षुब्ध हो गये – संकुचित हो गये – माने लज्जित हो गये और सनत्कुमारों को अभिमान न हो गया कि हमने अपने पिता जी से ऐसा प्रश्न किया कि – पिता जी चक्कर खा गये।

एवं पृष्टो महादेवः स्वयं भूर्भूत भावनः।
ध्याय मानः प्रश्न बीजं नाभ्य पद्यत कर्म धीः।।

श्रीमद भाग. 11–13 पृ. 615

तो भगवान श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं – उस समय ब्रम्हा जी को कुछ न सूझा – तो ब्रम्हा जी ने मेरा ध्यान किया।

स माम चिन्त यद देवः प्रश्न पार तितीर्षया।
तस्याहं हंस रूपेण सकाश मगमं तदा।। 19

श्री मद् भाग 11–13–615

जब ब्रम्हा जी ने मेरा ध्यान किया – तो उस समय ब्रम्हा जी के समक्ष – हंस रूप में प्रगट हो गया। 24 अवतारों में भगवान का यह हंसावतार है – हंस रूप में प्रगट हो गये। श्री भगवान कहते हैं – ब्रम्हा जी ने मेरा ध्यान किया – चिंतन किया – तो भगवान का चिंतन करना क्या है? क्या चिंतन किया? हमारा ऐसा स्वभाव बन गया है – कि जब तक मैं अनुभव न करा लूं न – तब तक हमको स्वयं को संतोष नहीं होता। तो ब्रम्हा जी ने मेरा चिंतन किया – ब्रम्हा जी ने क्या चिंतन किया? देखो– जीवन में जब कभी कोई ऐसी समस्या आ जाती है – और प्रश्न या समस्या जटिल है – उसका समाधान नहीं होता – और उसको सुलझाना है – उत्तर देना है – तो क्या करते हो – तुम उस वक्त – अरे – निःसंकल्प हो जाते हो – या संकल्प के अन्दर रहते हो – और निःसंकल्पता ही भगवान आत्मा का चिंतन है। रात दिन यार! सब के सब इसी में हो। कोई भी ऐसी जटिल समस्या आ जाती हे – तो बड़ी गम्भीरता से सोचते हो। चाहे – कितना भी चित्त चंचल क्यों न हो – बड़ी गम्भीरता से सोचते हो – और जहाँ निःसंकल्प स्थिति हुई – फट से उत्तर निकलता है – क्या देर लगती है – यही भगवान का आत्म चिंतन है – भैया यही है भगवान का चिंतन। यह निःसंकल्प होना ही भगवान आत्मा का चिंतन है। अरे यार! रात दिन तुम अपना व्यवहार इसी में पालन कर रहे हो। सारा प्रपंच करते हो। जहाँ मन समेट कर निःसंकल्प स्थिति में स्थित हुए नहीं कि – फट् से उत्तर निकल जाता है। यही भगवान आत्मा का चिंतन है – स्मरण है।

इस समय क्या तुमको कुछ करना पड़ता हे –चित्त के निरीध के लिए – निःसंकल्प करने क लिए अभ्यास करते हो? चित्त के ऊपर तुम्हारा कितना कमाण्ड है – कितना तुम्हारा आधिपत्य

है – कितना अधिकार है – जिस समय चाहते हो – उस समय निःसंकल्प हो जाते हो – और इतने महान् होकर दीन बनते हो।

"माब्रूहि दीनंवचः" शास्त्रों और महान पुरूषों से हमने यही सबक सीखा हे कि – "माब्रूहि दीनंवचः" किसी के सामने दीन मत बनों – किसी से दीन वचन मत बोलो – निकाल दो अपने हृदय की इस छुद्रता को। इस गरीबी को – इस छुद्रता को निकाल दो। कितने तुम महान हो – जब चाहते हो – जहाँ चाहते हो – घंटों तुम निःसंकल्पित रहते हो – जब चाहते हो– जहाँ चाहते हो –घंटों तुम निःसंकल्प रहते हो – किसी साधन की जरूरत नहीं पड़ती। और फिर भी निःसंकल्प होने के लिए – साधन की तुम आपेक्षा रखते हो – साधन जगत में दौड़ लगाते हो – कि मैं निःसंकल्प होऊ जबकि "मैं" सदैव निःसंकल्प हूँ – यही मस्ती है। हाँ तुम निःसंकल्प होने के लिए साधन जगत में दौड़ लगाते हो यही मस्ती है। यही मस्ती है। अरे--तुम जहाँ हो – वहीं तुमको बैठा रहे हैं – तुम जहाँ बैठे हो – वहीं हम बता रहे हैं– तुमको हम यहाँ से उठाकर वहाँ नहीं सरका रहे हैं।

यही प्राप्ति की प्राप्ति है – अप्राप्त थोड़े हो – सब मस्त है। सब निजानंद में मस्त हैं। चाहे कोई विद्वान हो या अपढ़ हो– बिना पढ़ा हो – इसी मस्ती में सब मस्त हैं – सारा विश्व मस्त हैं – संसार में सब मस्ती में मस्त हैं। सब निजानंद में मस्त हैं।

जो बतलावे साधना आप अधूरा होय।
मिलत मिलावे राम से सतगुरू कहिये सोय।।

कोई नहीं चीज हम नहीं लखा रहे हैं – तुमको भैया! तुम अपने ही घर में हो – घंटो निःसंकल्प रहते हो – जब कोई किताब

पढ़ते हो – कोई कानून देखते हो – किसी पर विचार करते हो– कितना निःशंकल्प रहते हो – कौन सा साधन करते हो। इन्द्रियों पर तुम्हारा कितना कमाण्ड – चित्त पर तुम्हारा कितना कमाण्ड – अरे – किस पर तुम्हारा कमाण्ड नहीं है – क्या साधन करते हो। अगर चित्त पर तुम्हारा कमाण्ड न हो– तो कैसे कोई काम हो सकता है। यारो! सिर्फ इसको समझने की जरूरत है।

यद् भयात वात वातोऽयं सूर्यस्तपति यद् भयात्।
वर्ष तिन्द्रो दहति अग्निर्मृत्युश्चरतियद् भयात्!!
भया दस्याग्निः स्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भया दिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।
कठोपनिषद् अध्या. 2 वल्ली 3 पृ. 132

जिसके भय से सूर्य तपता है – जिसके भय से वायु बहता हे – जिसके भय से इन्द्र वर्षा करता है – जिसके भय से अग्नि काष्ठ का दहन करता है। जिसके भय से मृत्यु चराचर संसार को चरता है – ग्रसता है – सा वह "भगवान आत्मा मैं" हूँ। मुझ आत्मा का शासन सारे विश्व में है। में अपने आप को खींच लूं तो – सूर्य की हस्ती नहीं कि – वह दुनियाँ को रोशनी दे सके। तो सूर्य भी नहीं रहेगा – यही मुझ "भगवान आत्मा "मैं" की महानता है।

यदा दित्य गतं ते जो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्र मसियच्चाग्नौ तत्ते जो विच्दि मामकम्।।

गी. 15–12

यह भगवान आत्मा "मैं" की महानता है – हर वक्त निःसंकल्प हो जी हां – हर वक्त तुम निःसंकल्प हो।

बस इसी को समझना है। निः संकल्पता में ही रातदिन तुम्हारे

समस्त व्यवहार हो रहे हैं। बिना प्रयास के बिना साधन के ही निः संकल्पता स्वंय सिद्व है।क्योंकि यदि साधन के द्वारा चित्त को निःसंकल्प करोगें तो वह निःसंकल्पता क्षणिक होगी –वह चिरस्थाई नहीं होगी –क्योंकि साधन का फल हमेशा अनित्य हुआ करता है –क्षणिक होगा चिरस्थाई नहीं । साधन से यदि चित्त को निःसंकल्प करोगे तो जब तक साधना जगत में हो–तभी तक तुम्हारा मन निःसंकल्प रहेगा साधन से बाहर आने पर फिर संसार की तरफ दौड़ेगा –चिरस्थाई नहीं । जी हां जब तक साधन जगत में रहते हो –तभी तक निःसंकल्पता रहेगी। परन्तु जहां साधन से बाहर आये –तो फिर मन संकल्प विकल्प करने लगता है। तो अपनी महिमा को भूलकर ही प्यारे तुम साधन की आपेक्षा रखते हो। अपनी महिमा को न जानकर। साधन द्वारा चित्त को निःसंकल्प करना ही महिमा को भूलना है। अरे यह मेरी महिमा है ऐसा जानना। महिमा को जानना नहीं है। यह "भगवान आत्मा मैं की महिमा है–यह भी जानना–भगवान आत्मा की महिमा नहीं है। तो फिर महिमा को भूलना कहते हो–तो महिमा का भूलना क्या है? यही महिमा का भूलना होता है। अरे चित्त को निःसंकल्प करने के लिए जो तुम्हारा विकल्प होता है। चित्त को निःसंकल्प करने के लिए जो तुम साधन ढूंढते हो –यही महिमा का भूलना है। निःसंकल्प तो है ही अरे स्वयं ही है। जब चाहते हो –घंटो निःसंकल्प रहते हो। अभी कथा तुम निःसंकल्पता में सुन रहे हो–शब्दादिक विषयों की अनुभूति तुम निःसंकल्प स्थिति में करते हो। ओमं – शिव जहां देखो निःसंकल्पता ये जो मैं तत्व का प्रतिपादन कर रहा हूं निः संकल्पता में कर रहा हूं –तुम जो इसका निरूपण सुन रहे हो–निःसंकल्पता में सुन रहे हो। अरे–सार विश्व ही

निःसंकल्प है। और उसी समय मैं "भगवान आत्मा मैं" की महिमा से अलग होता हूं –जिस समय ऐसा विकल्प करता हूँ–ऐसा कल्पना करना हूँ–कि चित्त को निःसंकल्प करने के लिए –कोई न कोई साधन करना चाहितए। ओ –हो –हो हो।

कहीं प्राणायाम करता हूं –तो कहीं समाधि का अभ्यास करता हूं तो कहीं योग साधन करता हूं । और निःसंकल्पता पहले से ही स्वंय सिद्व है। इसी लिए मुक्ता बाबर बार यही कहा करता है।

भैया! यह करने धरने की चीज नहीं हैं। इसके लिए तुमने कुछ किया कि –लाखों कोश दूर हुए। क्योंकि यह लखने की चीज है। यह अनुभव करने को चीज है करने धरने की चीज नहीं है। क्योंकि यदि साधन से प्राप्त करोगे –तो अनित्य हो जायगा क्योंकि साधन का फल अनित्य हुआ करता है। कालान्तर में उसका नाश हो जाता है। इसीलिए यह करने धरने की चीज नहीं है। प्रणायाम समाधि के द्वारा क्षणिक निः संकल्प ता ही हाथ लगती है। अरे जो स्वतः सिद्व है –जो स्वंय सिद्व है –वह साधन से क्या प्राप्त होगा। बस–यह असाध्य रोग है –इसीलिए संत शरण लो। संतकृपा के भिखारी बनों –यह कृपा साध्य वस्तु है साधन का विषय नहीं है।

एवं पृष्टो महादेवः स्वंय भू र्भूति भावनः।
ध्याय मानः प्रश्न बीजं नाभ्य पद्यत कर्म धीः

श्रीमद् भागवत 11–13

इस प्रकार सनत्कुमारों के प्रश्न को सुनकर भगवान ब्रहाजी बड़ी देर तक उन्होंने उत्तर देने की चेष्टा तो की परन्तु उत्तर न दे सके जब न दे सके तो ब्रहा जी का हृदय विक्षुब्ध हो गया। उस समय श्री भगवान कहते हैं। ब्रहा जी ने मेरा ध्यान किया। ध्यान की विधि अभी मैं बता चुका हूं –यही भगवान

आत्मा के ध्यान की विधि है। जी हां–

स्वामीजी। क्या निः संकल्प स्थिति में भी भगवान का ध्यान होता है – और संकल्प अवस्था में नहीं होता है? अरे यार । वही बात फिर तुमने कही –

यदि निः संकल्पता में ही भगवान का ध्यान हो तो

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च – गी. 8–7

अरे सर्वेषु कालेषु मानुस्मर–

सर्वकाल में मेरा स्मरण भी कर और युद्व भी कर ।

भगवान के बचन को क्या कहें –कन्हैया जैसा टेढ़ा है –वैसा ही उसके बचन भी टेढ़े है। युद्व भी कर और स्मरण भी कर युद्व सरीखे भीषण समय में अपनी रक्षा करना –सारथी की रक्षा करना घोड़ो की रक्षा करना रथ की रक्षा करना और सम्मुख शत्रु को मारना इत्यादि कितनी जिम्मेदारी सैनिक पर होती है। और भगवान कहते हैं कि स्मरण भी कर और युद्व भी कर।

तो फिर वह कौन सा ऐसा स्मरण हैं कि युद्व काल में भी होता रहे। तो वह कौन सा स्मरण है कि जिसमें युद्व भी होता रहे और स्मरण भी होता रहे । तो इससे सिद्व होता है कि निःसंकल्प है तो स्मरण है और संकल्प होता रहे तो भी भगवान का स्मरण ही है। इसलिए निःसंकल्प अवस्था में ही युद्व और स्मरण दोनों ही कार्य होते है। और सर्वकाल में भगवान का ही स्मरण हो रहा है। इस प्रकार तुम्हारे समस्त कार्यनिः संकल्पता में ही हो रहे है।

तो श्री भगवान कहते हैं –इस प्रकार ब्रम्हा जी ने जब मेरा चिंतन किया ध्यान किया माने मेरा स्मरण किया – तो ठीक एक बजे मैं ब्रह्मा जी सामने -- हंस रूप में प्रगट हो गया।

"हरि ओमं तत् सत्"

जी हां –सूत्र –
हर वक्त तुम निः संकल्प हो – बस इसे ही समझना है।
बिना किसी साधन के निः संकल्पता सिद्व है।

गुरूवन्दना

भगवान गौड़ पादाचार्य जी अपने गुरूदेव व भगवान परम हंस स्वामी परम पूज्य अनन्त श्री विभूषित परिब्राजक प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी शुकदेवजी महाराज की स्तुति गौड़ पादीय कारिका में इस प्रकार किए हैं।

"ओम श्री गुरूवे नमः"

अजमपि जनि योगं प्रापदैश्वर्य योगा
दगति च गति मत्तां प्रापदेकां ह्यनेकम्।
विविध विषय धर्म ग्राहि मुग्धेक्षणानां
प्रणत भय विहन्तृ ब्रम्हा यत्तन्नतोऽस्मि।।

जो ब्रम्ह अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से – अजन्माओं को जन्म देते हैं – गति हीनों को गति प्रदान करते हें – विविध प्रकार के विषय भोगों में मुग्ध दृष्टि वालों को धर्म की ओर प्रवृत्त करते हैं – उनको ब्रम्ह (परमात्मा) को मैं नमस्कार करता हूँ।।1।।

प्रज्ञा वैशाख वेध क्षुभित जलनिधेर्वेद नाम्नोऽन्तरस्थं
भूतान्या लोक्य मग्नान्य विरत जनन ग्राह घोरे समुद्रे।
कारूण्यादुद्द धारामृत मिदम मरैर्दुर्लभं भूत हे तो–र्यस्तं

पूज्याभि पूज्यं परम गुरूममुंपाद पातै र्न तोऽस्मि।।2।।

अपनी प्रज्ञा रूपी मथानी से – निरंतर जन्म मरण रूपी ग्राह से ग्रसा एवं क्षुब्ध – संसार समुद्र को मथकर जिसने वेद (ज्ञान) प्रगट किया – और जिसने करूणा पूर्वक – दैव दुर्लभ – इस

दुग्ध धारा को – प्राणियों के लिए प्रवाहित किया – पूज्यों के पूज्य ऐसे परम गुरूदेव के चरण कमलों में मैं नत हूँ – उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

यत्प्रज्ञा लोक भासा प्रति हति मगमत्स्वान्त मोहान्ध कारौ
मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यस कृदु पजनो दन्वति त्रासने मे।
यत्पादावा श्रितानां श्रुति सम विनय प्राप्ति रम्या ह्यमोधा
तत्पादौ पावनीयौ भव भय विनुदौ सर्व भावैर्नमस्ये।।3।।

जिनकी प्रज्ञा के प्रकाश से लोक भासित होता है – हृदय का मोहान्धकार नष्ट होता हैं। बार बार डूबते हुए – अंतः भयाक्रान्त मुझे – जिसने सदा उबारा है। जिनके चरणों का आश्रय लेने पर – अमोध शान्ति और विनय प्राप्ति होती है और जिसके पावन चरणों का आश्रय लेने पर – भव भय से मुक्त हुआ जाता है – उन गुरूदेव महाराज को मैं – सब प्रकार के भावों से भजता हूँ – उनके चरण कमलों को मैं सब प्रकार के भावों से नमस्कार करता हूँ।

"हरि ओम तत्सत्"

आरती

आरति सद्गुरू देव नमामी। पार ब्रम्हा प्रभु अन्तरयामी।।

अगुण अपार अलख अविनाशी।अचल विमल प्रभु सब उर बासी।
निर्गुण निर्विकार सुखरासी।एक अरूप अलेख अनामी।।आ.।। 1

महिमा नेति नेति श्रुति गावें। नित्य निरंजन सब बतलावें।
शेष शारदा पार न पावें। जय सच्चिानंद सुर अभिरामी।।आ।।2

बचन किरण तम मोह विनाशक। ज्ञान सूर्य माया केशासक।
दिव्य दृष्टि के परम प्रकाशक। ब्रम्हादिक सुर सेव्य नमामी।।आ।।3

जब तक कृपा न तुम प्रभु करते। विधि हरि हर क्या भवसेतरते।
असविचार गुरू भक्ति जो करते।मिलते रामउन्हेंसुखाधामी।।आ।।4

गुरूवर चरण कमल की छाया। करती दूर ताप त्रय माया।
जब तक पूर्ण न होवै दाया।मिलत नहीं शिव अन्तर्यामी।।आ।।5

भक्ति ज्ञान वैराग्य नियम के। रूप सकल इन्द्रिय संयम के।
भूषण शम दय पंच सुयम के।श्रोत्रिय ब्रम्हा निष्ठ ममस्वामी।।आ।।6

जीवन धन मंजुल निज जन के। अंकुश मद मतंग जन मन के।
शुचि पथ परमारथ पथिकन के।इक रस आनंद रूप नमामी।।आ।।7

आरति सद्गुरू देव नमामी। पार ब्रम्हा प्रभु अंतर यामी।।
ब्रम्हा विष्णु सदा शिव गुरू मूरति धारी। प्रभु गुरू.

आरती

ओम जय गुरूदेव दयानिधि दीनन हितकारी। प्रभुदीनन.
जय जय मोह विनाशक भव बंधन हारी।। ओम जय गुरू देव
हरे। अचलावेद पुराण बखानत गुरू महिमा भारी।। ओम जय.
जप तप तीरथ संयम दान विविध दीन्हें। प्रभु दान.
गुरू बिन ज्ञान न होवै कोटि यतन कीन्हें।। ओम जय.
माया मोह नदी जल जीव बहे सारे। प्रभु जीव.
नाम जहाज बिठाकर गुरू पल में तारे।। ओम जय.
क्राम क्रोध मद मत्सर चोर बड़े भारे। प्रभु चोर.
ज्ञान खड्ग ले कर में गुरू सब संहारे।। ओम जय.
नाना पंथ जगत में निज निज गुण गावे। प्रभु निज.
सब का सार बताकर गुरू मारग लावें।। ओम जय.
गुरू चरणामृत निर्मल सब पातक हारी। प्रभु सब.
बचन सुनत तम नाशै सब संशय हारी।। ओम जय.
तन मन धन सब अर्पण गुरू चरणन कीजै। प्रभु गुरू.
स्वामी जी महाराज परम पद मोक्ष गति दीजै।। ओम जय.

अथ प्रार्थना

ओम त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधु च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्यो द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।
ओम ब्रम्हानंद परम सुखंद केवलं ज्ञान भूर्तिम।
द्वन्दातीतं गगन सदृशं तत्व मस्यादि लक्ष्यम्।।
एकं नित्यं विमल मचलं सर्व धी – साक्षि भूतम्।।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद् गुरूम् तन्नमामी।।
अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येम चराचरम्।
तत् पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरूवे नमः।।
अज्ञान तिनि रान्धस्य
ज्ञानाञजन शलाकया।
चाक्षुन्मील तं येन तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।।
गुरूः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।
ध्यान मूलं गूरोर्मूर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम्।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्य मोक्ष मूलं गुरोः कृपाः।।

"अद्वय तारकोप निषद्"

गुरू भक्ति समायुक्तः पुरूषज्ञों विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरूरित्य भिधीयते।।
गु शब्द स्त्वन्धकारः स्या द्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अंधकार निरोधित्वाद् गुरूरित्य भिधीयते।।

गुरू भक्ति सम्पन्न मनुष्य (व्यक्ति को) श्रोत्रिय माने वेद शास्त्रों के ज्ञाता और ब्रम्हानिष्ठ माने भगवद् दर्शन प्राप्त गुरू का ध्यान नित्य करना चाहिए। गु माने अंधकार – रू माने प्रकाश। जो हृदय के अंधकार को दूरकर – नित्य प्रकाश – स्वयं प्रकाश "मैं आत्मा" का

दर्शन करा दे – ऐसे गुरू का ध्यान नित्य करना चाहिए।

गुरू रेव परं ब्रम्हा गुरूरेव परा गतिः।
गुरू रेव परा विद्या गुरूरेव परायणम्।।
गुरू रेव परा काष्ठा गुरूरेव परंधनम्।

यस्मात् तदुपदेष्टा सौ तस्माद् गुरू तरो गुरूरिति।।

गुरू ही परब्रम्ह्य परमात्मा हैं – गुरू ही परागति माने मोक्ष गति है –(मोक्ष गति प्रदान करने वाले हैं) गुरू ही परा विद्या – माने मन वाणी से परे – अवांगमनस गोचर – अनिर्वाच्य – तुष्णी पद – "मैं आत्मा" पद प्रदान करते हैं – यही सर्व विधाओं की पराकाष्ठा–याने अन्तिम पद है। गुरू ही परंधन हैं। इसलिए– गुरू भक्त को इस प्रकार का ध्यान नित्य करना चाहिए।

यः स कृदुच्चारयति तस्य संसार मोचनं भवति।
सर्व जन्म कृतं पापं तत्क्षणा देव नश्यति।।
सर्वान्कामान् वाप्नोति। सर्व पुरूषार्थ सिद्धि र्भवति।
ए एवं देद वेदेत्सुपनिषद्।।

ओम पूर्ण मदः इति शा

अद्वश्य तारकोप निषद् पृष्ठ

माता श्रुति कहती हैं कि –

जो इस प्रकार का उच्चारण प्रेम से बार बार करता है – उ
पूर्व जन्म के सब पाप – गुरूदेव की कृपा से तुरन्त नाश
जाते हैं। वह संसार बंधन से मुक्त हो जाता है – उसकी स
प्रकार की कामनाएं पूर्ण होती हैं – वह सभी प्रकार
पुरूषार्थ की प्राप्ति करता है। इस प्रकार वेद में – उपनि
में कहा गया है।

ॐपूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णाति पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवा वाशिष्यते।।
ॐशान्तिः! ॐशान्तिः!! ॐशान्तिः

।। ॐ श्री परमात्मने नमः।।